

**THE BOOK WAS
DRENCHED**

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_180213

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. ~~H854~~ ⁸⁵⁴ ~~B46K~~ Accession No. G.H. 3168

Author ~~के.ए.~~ ^{के.ए.}, द.रा.

Title ~~कवि-श्रीमाला~~ ^{कवि-श्रीमाला}; कन्नड ११६२

This book should be returned on or before the date
last marked below.

कवि-श्री माला

* कन्नड़ *

कवि :

दत्तात्रेय रामचन्द्र बेन्द्रे

सम्पादक—अनुवादक

एम. एस. कृष्णमूर्ति

“भारत सरकार की ओर से भेंट”



राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा

प्रकाशक :

मोहनलाल भट्ट

मन्त्री :

राष्ट्रभाषा प्रचार समिति,

हिन्दीनगर, वर्धा

● ● ●

सर्वाधिकार सुरक्षित

प्रथम संस्करण—३०००

मई, १९६२

मूल्य-रु. २/-

● ● ●

Checked 1969

मद्रक :

मोहनलाल भट्ट

राष्ट्रभाषा प्रेस,

हिन्दीनगर, वर्धा

● ● ●

हर्षका विषय है कि राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति, वर्षी अपने कार्य कालके २५ वर्ष सन् १९६१ में पूरे कर रही है। इस उपलक्ष्यमें मनाये जानेवाले रजत-जयन्ती महोत्सवके अवसर पर सभी भारतीय भाषाओंके मान्य कवियोंका तथा उनके उत्कृष्ट काव्यका परिचय 'कवि-श्री माला' की पच्चीस पुस्तकोंमें हिन्दी-गद्यानुवाद सहित प्रकाशित करनेकी योजनाके अन्तर्गत प्रस्तुत ग्रन्थ पाठकोंके समक्ष आ रहा है।

यद्यपि किसी भी भाषाके सर्वश्रेष्ठ काव्य-सर्जकका निश्चय करना एक कठिन कार्य है, फिर भी अपनी सीमाओंको ध्यानमें रखते हुए गण्यमान्य उन-उन भाषाओंके विद्वानोंकी रायसे ही चुनावका कार्य सम्पन्न किया गया है।

प्रत्येक पुस्तकके आरम्भमें जिस भाषाके कविकी रचनाओंका चयन किया गया है, उस भाषाके साहित्यका परिचय और कवि विशेषका परिचय दिया गया है। जिस भाषाके दो कवियोंका चुनाव किया गया है, उनका चुनाव करते समय सन् १९२० से पूर्वका साहित्य और १९२० से बादका साहित्य—इस तरहसे एक विभाजन-रेखा ध्यानमें रखी गई है। इसका कारण यह है कि लगभग सन् १९२० के पूर्वके तथा १९२० के बादके साहित्यमें प्रवाहित विचार-धारामें एक विशेष प्रकारका अलगाव-सा पाया जाता है।

श्री एम. एस. कृष्णमूर्तिने प्रस्तुत पुस्तकमें संकलित साहित्यको चुनने, काव्यांशको सम्पादित तथा अनूदित कर सारी सामग्रीको इस रूपमें प्रस्तुत करनेमें सहयोग दिया है। कविताओंका प्रूप देखनेमें श्री गुरुनाथजी जोशीका सहयोग मिला है। संग्रहकी आवरण डिजाइनको बनवा देनेमें श्री व्ही. एन. अडारकरजी (डीन, सर जे. जे. इन्स्टीट्यूट आफ अप्लाइड आर्ट, बम्बई) का उदार सहयोग मिला है, उसके लिए समिति सभीकी आभारी है।

इसके अतिरिक्त छपाई तथा अन्यान्य दृष्टियोंसे जिन-जिनका प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष सहयोग मिला है, उनके प्रति भी समिति अपनी कृतज्ञता व्यक्त करती है।

आशा है, प्रस्तुत संग्रह पाठकोंको रुचिकर एवं उपयोगी प्रतीत होगा।

K. Ramesh

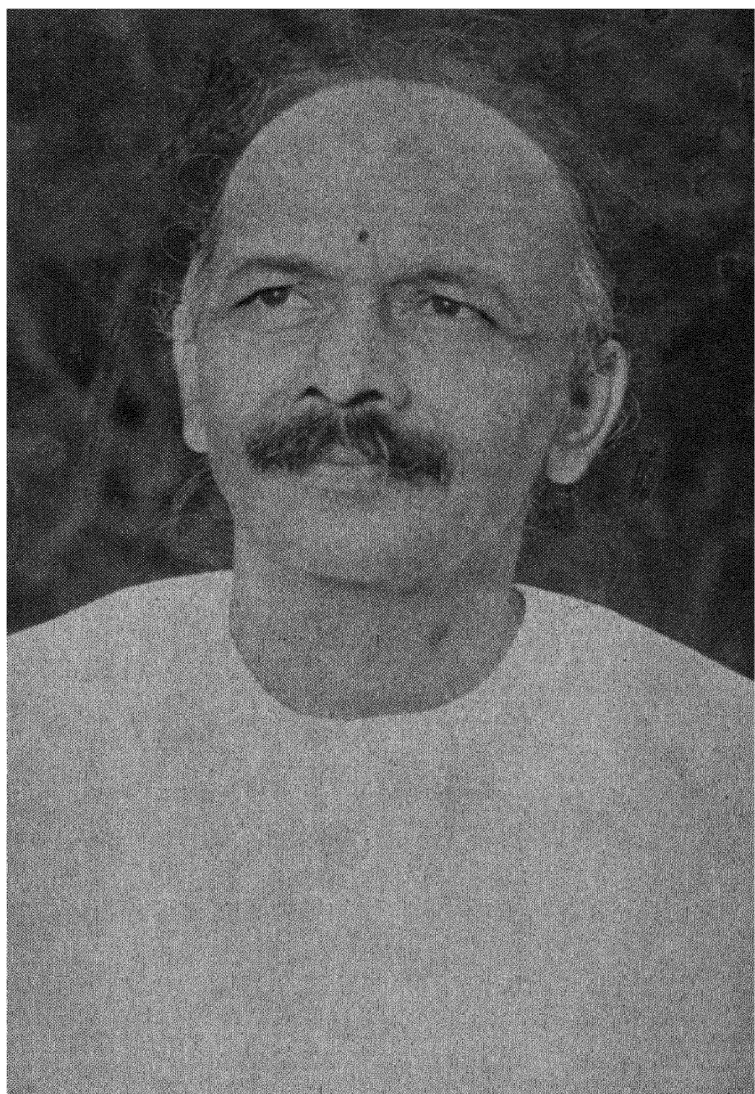
सन्त्री,

राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्षी

अनुक्रमणिका

	पृष्ठांक
कवि-परिचय	१
कन्नड़-साहित्य-परिचय [प्रारम्भ से १९२० तक]	२३
काव्य-सञ्चय	५१

[कवि-श्री माला—कन्नड़]



दत्तात्रेय रामचन्द्र बेन्द्रे

दत्तात्रेय रामचन्द्र बेन्द्रे

[कवि-परिचय]

दत्तात्रेय रामचन्द्र बेन्द्रे



महाकवि दत्तात्रेय रामचन्द्र बेन्द्रेजीका जन्म ३१ जनवरी सन् १८९६ ईसवीमे मलेनाडु (पहाड़ी प्रदेश) तथा बयलुनाडु (समतल प्रदेश) की मिलन-भूमि-धारवाड़के एक सम्भ्रान्त एवं सुसंस्कृत ब्राह्मण परिवारमे हुआ। उनके पूर्वज सांगली संस्थानके शिरहट्टी नामक ग्रामके निवासी थे। बेन्द्रेजीके पितामह श्री अप्पा भट्ट संस्कृतके प्रकाण्ड पण्डित थे। उन्होंने 'पार्वती परिणय' नामक एक काव्यका संस्कृतमें, तथा मराठीमें एक पिंगल ग्रन्थका प्रणयन किया था। अप्पा भट्टजी कर्मठ तथा वैराग्यवृत्तिवाले थे। अपने अन्तिम दिनोंमें वे संन्यासी हुए थे। उनकी समाधि आज भी शिरहट्टीमें बड़ी श्रद्धासे पूजी जाती है।

अप्पा भट्टजीके दो पुत्र थे। उनके ज्येष्ठ पुत्र रामचन्द्र भट्ट या रामू तात्या थे। बेन्द्रेजी श्री रामचन्द्र भट्टके सुपुत्र हैं; किन्तु बेन्द्रेजीके भाग्यमे पिताकी छत्रछाया नहीं बदी थी। बहुत ही छोटी अवस्थामे रामचन्द्र भट्टका देहान्त हो गया। बेन्द्रेजीके मामा बण्डेरावजीने इनकी शिक्षा-दीक्षाके कार्यमे काफी सहायता की। इनकी माता श्रीमती अम्बिकाताई एक परम भक्त तथा वात्सल्यमयी थी। 'एकनाथी भागवत' उनका प्रिय ग्रन्थ था। मराठी सन्तोंके अभंग तथा कन्नड़ हरिदासोंके कीर्तन उन्हें अत्यन्त प्रिय थे। बेन्द्रेजीके जीवनपर पितामहकी वैराग्यवृत्ति तथा माताकी भक्तिकी अमिट छाप पड़ी है। अपनी माता-जीके संस्मरणार्थ बेन्द्रेजीने अपना काव्य-नाम "अम्बिकातनयदत्त" रखा।

बेन्द्रेजीकी हाइस्कूल तककी शिक्षा धारवाड़के विक्टोरिया हाइस्कूलमें हुई। मैट्रिकके बाद पूनाके फर्ग्युसन कालेजमें आप दाखिल हुए। बी. ए. पास होनेके पश्चात् आप धारवाड़ लौट आए और अपनी मातृसंस्था विक्टोरिया हाइस्कूलके अध्यापक बने।

बेन्द्रेजीकी मातृभाषा मराठी है। पूनामें रहते समय आप मराठी कवि केशवसुतकी कविताओंसे प्रभावित हुए। बचपनसे ही बेन्द्रेजीकी काव्य रचनाकी ओर रुझान थी। स्कूलमें पढ़ते समय कण्ठस्थ पाठोंकी स्पर्धाके सभी पुरस्कार उन्हींको प्राप्त होते थे। कन्नड़ कवि लक्ष्मीशकी नाद-माधुरीने उनपर जादूकासा असर किया था। सन्त कवि सर्वज्ञका अल्हड़पन उन्हें बहुत ही प्रिय था। धारवाड़का रम्य प्राकृतिक वातावरण साधारण व्यक्तिको भी कवि बनानेवाला है। ऐसी स्थितिमें बेन्द्रे-जैसे प्रतिभा-सम्पन्न व्यक्तिके विषयमें तो कहना ही क्या! इसके अतिरिक्त उत्तर कर्नाटकमें प्रचलित लोकगीत, लोकनाट्य, आदिका अधुण्ण प्रभाव भी कविके बाल मनपर पड़ा।

रामकृष्ण परमहंस, विवेकानन्द, कवीन्द्र रवीन्द्र आदिका भारतकी जनता एवं साहित्यपर काफी प्रभाव था। महात्मा गाँधीजीका स्वराज्य-आन्दोलन भी इसी समय शुरू हुआ। इन दो धाराओंके साथ महर्षि अरविन्दकी दार्शनिक धारा भी आ मिली। इन तीनों पुरुषोंकी विचार धाराका प्रभाव श्री बेन्द्रेजीकी चिन्तन-प्रणालीपर पड़ना स्वाभाविक ही था। गुरुदेव रवीन्द्रकी 'साधना' नामक पुस्तक बेन्द्रेजीकी प्रिय पुस्तक रही। अपने विद्यार्थी जीवनमें वे घण्टों उसका पारायण करते थे। विवेकानन्द द्वारा रचित साहित्यका गम्भीर अध्ययन कर बेन्द्रेजी विवेकानन्द बननेका स्वप्न देखते थे। जब वे बी. ए. में पढ़ते थे तो अचानक एक दिन उन्होंने अरविन्दकी 'आर्य' पत्रिका देखी। इस पत्रिकाने उनके जीवनकी गति ही बदल दी। तबसे आजतक बेन्द्रेजी अरविन्दके अनन्य अनुयायी हैं। उन्होंने एकबार ठीक ही कहा था, "अरविन्द तथा रवीन्द्र मेरे दो नेत्र हैं; नेत्रोंके दो होनेपर भी दृष्टि एक है।" बेन्द्रेजीने अरविन्दसे योगका पाठ सीखा, रवीन्द्रसे काव्य योगका। कर्नाटकके सन्त प्रभुदेव, सर्वज्ञ, निजगुणशिवयोगी आदिका प्रभाव इनपर कम नहीं है। इसके साथ महाराष्ट्र सन्त ज्ञानदेव, रामदास आदिका प्रभाव भी उनपर अधुण्ण है। कालेज जीवनमें आयरलैण्डके दार्शनिक कवि ए. ह. तथा यीट्स आदिका चिन्तन, रहस्यवाद, स्वप्नदर्शन आदिसे भी वे प्रभावित हुए।

बेन्द्रेजी एक गम्भीर चिन्तक एवं महान स्वप्नद्रष्टा हैं। कालेजमें पढ़ते समय ही आपने यह निश्चय कर लिया था कि वे अपना समग्र जीवन कर्नाटकके सांस्कृतिक जागरणके लिए समर्पित कर देंगे। अतः बी. ए. पास होनेके पश्चात् आप धारवाड़

लौट आए और काफी प्रयत्नोंके बाद आपने एक राष्ट्रीय विद्यालयकी स्थापना की। उसके पश्चात् काव्यशास्त्रविनोदार्थ 'गेळेर गुम्पु' की स्थापना की। भारतेन्दु मण्डली की भाँति इस मण्डलीने भी कन्नड़ साहित्यकी श्री-वृद्धिमें तथा कर्नाटकके सांस्कृतिक जागरणमें महत्वपूर्ण योग दिया है। आजके प्रख्यात कवि तथा आलोचक प्रो. वी. के. गोकक, प्रो. रं. श्री. मुगुली, आनन्दकन्द आदि इस मण्डलीके सदस्य थे। लोकगीतोंका संकलन, 'नाडहब्ब' जैसे सांस्कृतिक उत्सव, विद्यारण्य स्मारकोत्सव, पम्प, शान्तकवि आदि कवियोंकी जयन्तियाँ आदिका प्रवर्तन कर अिस मण्डलीने उत्तर कर्नाटकमें एक अभूतपूर्व आन्दोलन ही मचाया। मैसूरमें स्व. बी. एम. श्री कण्ठैयाजीके शिष्य तथा साथियोने जो कार्य किया, वही इस गेळेर गुम्पु (मित्र मण्डली) ने उत्तर कर्नाटकमें किया। बेन्द्रेजी इन सबके कर्णधार थे। 'गेळेर गुम्पु' की मुख पत्रिका 'जय कर्नाटक' मासिकके कल्पक भी बेन्द्रेजी ही है। 'जय कर्नाटक' आज भी एक उच्चकोटिकी साहित्यिक व सांस्कृतिक पत्रिकाके रूपमें विख्यात है। 'गेळेर गुम्पु' द्वारा बेन्द्रेजीने 'शान्तिनिकेतन'—जैसी महान् संस्थाकी स्थापना करनेकी इच्छा की थी, स्वप्न देखा था। किन्तु परिस्थितियोंकी विषमताने उनके स्वप्नको स्वप्न ही रहने दिया। 'जय कर्नाटक' के दो वर्ष पूर्व बेन्द्रेजीने 'स्वधर्म' नामक पत्रिका निकाली थी। जैसे आयर्लैण्डमें कवि यीट्सके नेतृत्वमें 'Irish revival' नामक जो सांस्कृतिक पुनर्जागरण हुआ, वैसा ही कार्य बेन्द्रेजीके नेतृत्वमें 'गेळेर गुम्पु' द्वारा कर्नाटकमें हुआ। इसके अतिरिक्त आपने महर्षि अरविन्दकी तत्त्वप्रणालीके अनुष्ठानार्थ एक अध्यात्म संघकी स्थापना की। इस संघके सदस्योंको विद्यारण्य की 'पञ्चदशी', शिवशरनोकी बानियाँ, जगन्नाथदासजीका 'हरिकथामृतसार', रत्नाकर वर्णीका 'भरतेश वैभव' आदि सद्ग्रन्थोंकी अध्ययन, तात्त्विक विचार चर्चा आदि मुख्य कार्यक्रम थे। बेन्द्रेजीके जीवनपर इसका बहुत ही प्रभाव पड़ा है। आपने वर्षमें एक-दो बार पाण्डिचेरी हो आनेका नियम-सा बना लिया है; महर्षि अरविन्दजीके दर्शन तथा आशीर्वाद प्राप्त कर चुके हैं।

इसी समय बंग-भंगका आन्दोलन देश भरमें फैल गया था। इसी बीच तिलकजीका अन्त और महात्मा गाँधीजीका उदय हुआ। इस देशव्यापी आन्दोलनका असर कर्नाटकमें भी दिखाई देने लगा। कर्नाटक कुलपुरोहित आलूर वेंकटराव, मुदवीडु कृष्णराव आदिके सिंहगर्जनने जनतामें अपूर्व चैतन्यका सञ्चार किया। बेन्द्रेजी भी इससे प्रभावित हुए और उन्होंने भी इस कार्यमें सक्रिय भाग लिया। फलतः आपको (१९३२-३३) भी जेलकी हवा खानी पड़ी और अपनी नौकरीसे भी हाथ धोना पड़ा। १९४० तक आप निरुद्योग रहे। बाल्यकालमें ही पितृवियोग, दारिद्र्य आदिकी आगमें बेन्द्रेजीका जीवन तपा; किन्तु उसीमें उनका कष्ट समाप्त नहीं हुआ। सन् १९२४ ईसवीके अन्दर ही उनको मातृवियोग, भ्रातृ-विरह, पुत्र-विरह, देशत्याग, वृत्तिच्छेद आदि क्लेशोंको सहना पड़ा। एक ही

सप्ताहमें उन्हें अपने दो तरुण पुत्रोंसे हाथ धोना पड़ा; किन्तु इन सब कष्टोंसे उनका मन विचलित नहीं हुआ। विपकी कड़वी घूंटोंको उन्होंने अमृत मानकर पिया। उनका शोक ही श्लोक बन गया। वेन्द्रेजीने स्वयं अपनी एक कवितामे कहा है :—

एन्र पाडेनगिरलि अदर हाडनध्दे
नीडुवेनु रसिक ! निनगे !
कल्लुसक्करेमंथ निन्नेदेयु करगिदरे
आ सविय हणिसु ननगे !

[हे रसिक, मेरा शोक मुझे रहे, उसका श्लोक तुम्हें दूँगा, यदि तुम्हारा हृदय खाँड-सा पिघलेगा तो उसका मधुर स्वाद मुझे देना।]

सन् १९४४ ईसवीमें वे डी. अ. वी. कालेज, शोलापुरमें कन्नड़के प्राध्यापक हुए। इससे पहले सन् १९४३ ईसवीमें शिवमोगाके कन्नड़-साहित्य-सम्मेलनके सभा-पति हुए थे। सन् १९५५ में उनके 'होस संसार' नाटकको बम्बई सरकारसे प्रथम पुरस्कार मिला। गरि, नादलीले, उय्याले, हाडु पाडु, गंगावतरण, मूर्तिमल्लु काम कस्तूरि, सखीगीत, सूर्ययान, चैत्यायलम् मुक्तकण्ठ, हृदय समुद्र, जीवलहरि, नमन, सञ्चय आदि कविता-संग्रहके साथ आपने मेघदूतका सुन्दर अनुवाद भी प्रस्तुत किया है। दो एकांकी संग्रह, पाँच समालोचनात्मक ग्रन्थ, प्रो. रानडेजीके उप-निषदोंका 'रचनात्मक सर्वेक्षण' तथा महर्षि अरविन्दके 'भारतमे पुनर्जागरण' का अनुवाद प्रस्तुत किया है। उनका नवीनतम कविता संग्रह 'उत्तरायण' हाल ही में प्रकाशित हुआ है। इनके अतिरिक्त आपने मराठीमें भी बहुतसे हास्य एवं व्यंग्य पूर्ण निबन्ध लिखे हैं। उनके कविता संग्रह 'अरळु मरळु' को १९५५-५७ का साहित्य अकादमी पुरस्कार मिला। उनका षष्ठ्यद्वि समारोह देश भरमें समारोहपूर्वक मनाया गया। पैंसठ सालकी वृद्धावस्थामे भी उनमे नौजवानोंको लजानेवाली एक तड़पती हुई चेतनाको हम पाते हैं।

काव्य-प्रेम तो आपमें बचपनसेही था। धारवाड़के वातावरणने उनके कविहृदयको वाणी दी। कविता करनेकी प्रेरणाके बारेमें उन्होंने एक ओर यों लिखा है; "मुझमें साहित्य प्रेम तो हाइस्कूलके दिनोंसे ही अंकुरित होने लगा था। जब मैं फर्ग्युसन कालेजमें था, तब वह पल्लवित हुआ। कन्नड़ भाषा, उसके काव्य तथा साहित्यको अंग्रेजी, संस्कृत तथा मराठी काव्योंकी श्रेष्ठता तक पहुँचानेकी किसी अज्ञात प्रेरणाने ही मुझे काव्य रचना की ओर प्रवृत्त किया। 'लक्ष्मीश' एवं 'सर्वज्ञ' कन्नड़ काव्यके मेरे काव्यगुरु बने। शेली, कीट्स आदिके काव्योंने मेरी काव्य-भावनाके उद्दीपनमें सहायता दी। कालिदास, जगन्नाथ पण्डित, जयदेव तथा शंकराचार्यजीके भक्ति-गीत इसके पूर्व ही मेरे मनमें निनादित होते रहे थे। रवीन्द्रनाथके अंग्रेजी गीत, श्री अरविन्दकी 'भविष्यत्-काव्य' नामक व्याख्यानमाला, एमर्सनकी निबन्धावली आदिमें अन्तर्हित काव्य-सूत्रोंने मेरे मनके ताने-बानेको बुना,

वचन (वीर शैव सन्तोंकी बानियाँ), ए. ह. की दृष्टान्त दीपिका, मोरिस मेटॉलिकके हृदयंगम युक्तिवाद आदिने मुझे सम्बल देकर आगे बढ़ाया।

..... राष्ट्रीय विद्यालयके वातावरणमें देशकी प्रतिभाके साथ राष्ट्रीयताकी प्रभावलि आ जुड़ी। घरमे माता अभंग तथा हरिदासोंकी पदावलियाँ सुनाती थी, उसके साथ गाँवमें साल भर तक मेरे कर्ण-कुहरोंमें पड़नेवाली लावणी, सन्तवाणियाँ तथा भक्तिपूर्ण गीत तथा श्री मङ्गलचार्ज कट्टीजीके साथ जो तात्विक चर्चा हो रही थी, इनकी त्रिवेणीने मेरी तुतली बोलीको 'जीवन' प्रदान किया।"

इस प्रकार बेन्द्रेजीके काव्य-पुरुषका आविर्भाव हुआ। सांस्कृतिक जागरणके कारण नवचैतन्यकी धारा आप्लावित धारवाड़के जनजीवन तथा उसके प्रकृति-सौन्दर्यने कवि जीवनको एक रंगसे रंग दिया।

सन् १९२९ के बेलगाँवके साहित्य सम्मेलनसे प्राप्त हुई प्रशंसासे बेन्द्रे-जीका नाम कन्नड़ भाषाके उत्कृष्ट कविके रूपमे सारे भारतमें फैल गया। उक्त सम्मेलनमे आपके द्वारा 'हविक हारुटिदे नोडिदिरा' (चिड़िया उड़ रही है, देखा क्या?) नामक कविता-पाठने श्रोताओंको मन्त्रमुग्ध-सा कर दिया था।

कन्नड़ काव्यमे इस कविताने एक नूतन तारका स्पन्दन किया। तब तक कन्नड़ कविता मानब हृदयके अन्दर-ही-अन्दर सञ्चार कर रही थी, समग्र विश्वकी ओर उसकी दृष्टि नहीं गई थी। किन्तु इस कवितामें कबिकी पहली बार विश्वकी ओर दृष्टि गई, काव्यकी शृङ्खलाएँ चकनाचूर हो गईं। कविने अनन्तकालका ही एक पक्षी बनाकर उसके रंग-बिरंगे पंख जोड़ दिए, सूर्य-चन्द्र ही उसकी आँखें बनीं। उसके उड़-नेके वेगमे अनेक साम्राज्य उलट-पलट गए। न जाने कितने भूखण्ड सागरकी लहरियोंपर तिर उठे! उसके पखोने दिक्कमडलोके छोरका स्पर्श किया, उसकी चोच दिगन्तको भी पार कर गई है। यह पक्षी अब ब्रह्माण्डोंको ही फोड़ने जा रहा है। इसी प्रकार प्रथम रूपमें कन्नड़ कविताको अपने कवि जीवनके बाल्य कालमे ही एक विश्व दृष्टि (Cosmic Vision) देनेवाले महाकवि 'अम्बिकातनयदत्त' है।

'नानु' (मैं) तथा 'अम्बिकातनयदत्त' नामक कविताओंमे कविने अपना परिचय देते हुए बताया है कि विश्व माता, भूमाता, भारतमाता, कन्नड़ माता तथा उनकी जन्म दात्री—ये पाँच सुमंगलियाँ उनके पञ्च प्राण हैं :—

ई ऐडु ऐडुमरे पञ्च प्राणगळ्यागि

ई जीवदेहनिहनु

हययारविदल्लिरुव नारायणने

तानागि बत्त नरनु

विश्वदोळ नुडियागि कन्नडिसुतिहनिहलि

अम्बिकातनयमिबनु

[इस जीव देहमें पाँच सुमंगलियाँ (विश्वमाता, भूमाता, भारतमाता, कन्नड़ माता, तथा जननी) ही पञ्चप्राणोंके रूपमें हैं। हृदयारविन्दमें स्थित नारायण ही नर दत्त बना है, यह अम्बिकातनयदत्त विश्वकी अन्तर्वाणीको कन्नड़में मुखरित कर रहा है।]

अम्बिकातनयदत्तजीका प्रथम कविता-संकलन 'गरि' (पंख) सन् १९३१ ईसवीमें प्रकाशित हुआ। 'गरि' का प्रकाशन कन्नड़ साहित्यमें एक महत्वपूर्ण घटना है। उसने कन्नड़ साहित्यमें एक नया मन्वन्तर ही ला उपस्थित किया है।

'गरि' की प्रथम कविता 'बेळगु' (उजाला) में कन्नड़ सहृदयोंके समक्ष उषाकी सुषमाका एक आलोकमय लोक ही रखा गया। उसकी नवीन कल्पना, नवीन शैली एकदम अनूठी है। वर्णनमें एक विलक्षण सौंदर्य है। मानवीकरण, अज्ञातके प्रति शिशुसहज कौतूहल आदिकी मार्मिक अभिव्यक्ति है। पेड़ोंपर बैठे पक्षियोंने उषाके आगमनसे पुलकित हो मीठी तान छेड़ दी। इसका कितना मोहक वर्णन है, देखिए:—

गिडगन्टेया कोरळोळिंगद

हक्कीगळ हाडु

होरटितु—हक्कीगळ हाडु।

गंधर्वरा सीमेयायितु

काडिना नाडु

क्षणबोळु—काडिना नाडु।

[वनस्थलियोंके वृक्षोंके कण्ठसे संगीतकी रागिनियाँ फूट पड़ीं, पक्षियोंकी रागिनियाँ फूट पड़ीं, क्षणभरमें सारा वनप्रान्त गन्धर्वोंके लोकमें परिणत हो गया।]

उषाके वर्णनमें छायावादकी छाया है तो 'चिन्ते' में चिन्ताका वर्णन भी छायावादी शैलीपर ही है। 'पातरगित्तिपक्क' (तितली) तो छायावादकी उत्कृष्ट कविता है। 'कोगिले' (कोयल) में पन्तजीकी 'कोकिल' की भाँति कवि करवट बदल लेता है। उसकी दृष्टि बदल जाती है। गतानुगतिक काव्यकी अपेक्षा वर्तमान काव्य का उद्देश्य क्या होना है, इसकी अभिलाषा देखिए। कवि कोकिलसे प्रश्न करता है:—

व्योम मंडल सुखधामवागुडुवंते

कामरतिय मीरि कोगिले !

प्रेम कवियु कंड स्तमवेदव नीनु

कूगुविया हेळु कोगिले !

[हे कोकिल, कामरतिको त्यागकर अनन्त व्योममण्डलको सुखधाम बनानेके लिए क्या तुम प्रेमकवि, उष्टारकी भाँति सामवेदके, उद्गीतका गान कर सकती हो?]

वास्तवमें यह कविता रीतिकालीन कवियोंके लिए एक चुनौती है।

कल्पनाके पंख उड़ाते रहनेवाला कवि युगकी कठोर वास्तविकतासे प्रभावित होकर यह अनुभव करने लगता है कि जब तक समाजमें मानवताकी प्राण-प्रतिष्ठा नहीं होगी, जब तक अर्ध नग्न, क्षुब्ध एवं शोषित जनताका क्रन्दन रहेगा, तब तक कविकी चाणी अरण्य रोदन बनी रहेगी, कलाकी चिरन्तन प्रतिष्ठा स्थापित नहीं होगी। 'केलसविल्लदवर हाडु' (निरुद्योगियोंका गीत) में इसकी यथार्थ अभिव्यक्ति है :—

ई हसिवेय कोल्लुव सुत्राण
एल्लिदे एल्लिदे बिल्लू बाण ?
चिन्नद सेरेयनु मोदले बिडिसि !
अन्नकल्पवृक्षव चिगुरिडिसि !
अल्लियवरेगू अन्न ऽ अन्न ऽ !
ओंदे हाडु केळले चिन्न !

[जीवनमें सर्वत्र प्रचण्ड बुभुक्षा है, हाहाकार मचा है। इस क्षुधाका संहार करनेकी शक्ति कहाँ है ? धनुषबाण कहाँ है ? सारा संसार सुवर्णकी कारामें आबद्ध है। क्या हममें ससारको उस कारासे छुड़ानेकी शक्ति नहीं है ? हम स्वर्गसे अन्नकल्पवृक्ष लाकर इस लोकमें लगाएँगे। तब तक सभी कविता, गीत, क्रन्दन मात्र हैं। तब तक हमारा गीत एक ही है ! सुनो प्यारे, अन्न, अन्न. . . !]

जब समाजमें ऐसी विषमता फैली है, ऐसा क्रन्दन मचा है तो कवि एकान्त संगीतमें निमग्न कैसे रह सकता है ? वह भी रुद्रवीणा बजाने लगता है, उसकी प्रलयंकरी तान सुनिए :—

थाको काणे
रुद्रवीणे
मिनुडियुतिरुवुदु ।
जीवराणे
यंते ताने
नुडियुतिरुवुदु ।

[जाने क्यों बज रही है बीन, जीवकी आज्ञाके अनुसार वह अपने आप स्पन्दित प्रस्पन्दित हो रही है !]

धर्मासन होरळुतिवे
सिंहासन उरळुतिवे
जाति-पंथ तेरळुतिवे
मनद मरेयलि ।

[धर्मासन डोल रहा है, सिंहासन मिट्टीमें लोट रहे हैं, जाति एवं पन्थ मनकी गहराइयोंमें जा छिपे हैं।]

इस वीणाकी अग्निवर्षामें समाजकी विगलित परम्पराएँ नष्ट-भ्रष्ट हो रही हैं। प्राचीन मूल्य-एवं विश्वास छिन्न भिन्न हो रहे हैं। 'तुत्तिन मील' (कौर की थैली) में मानव हृदयका आर्तनाद विश्वभरमें व्याप्त होता जाता है। दीन-दलितोंकी प्रचण्ड क्षुधाग्नि ब्रह्माण्डको ही कवलित करने जा रही है। उस भीषण सर्वग्राही ज्वालाके सामने धर्म कर्म, जाति पन्थ, ईश्वर, जन्म-मृत्यु सब छटपटा रहे हैं। इस विश्व सक्षोभका वर्णन रूपकोके द्वारा कविने क्या ही अद्भुत रीतिसे किया है :—

अन्न ब्रह्मद
देगुलदल्लि
बेळगू बंगू
छिळि छिटिबेंकि

[अन्न-ब्रह्मके मन्दिर-पेटमें दिन और रात निरन्तर रूपसे धधकते रहते हैं।
इधर नादब्रह्मके गह्वर-हृदयमें क्या हो रहा है !] देखिए :—

मौनद वीणेगे
कशळिन तति

[मौनकी बीनमें अँतड़ियोंके तार हैं।]

दीन दरिद्रोंके मूक संकटकी अभिव्यक्ति इससे बढ़कर और क्या हो सकती है ? शब्द ब्रह्मके गुम्बदमें पाप-पुण्यकी चर्चा चल रही है। हृदय बडबड़ाता रहता है फिर भी यह चर्चा निरन्तररूपसे चलती रहती है। गरीबके जीवकी मकड़ीको समाजके नेताओंने वेदवादके जालमें टाँग रखा है।

संसारमें सब गरीब ही नहीं हैं, एक ओर धनिकोंके भण्डार धनधान्यसे भरे पड़े हैं तो दूसरी ओर गरीब भूखके मारे छटपटा रहे हैं; उनके पेटकी थैली बिल्कुल खाली है। धनिकोंके हृदय पिघलनेवाले नहीं हैं, उनके मनमें दया-दाविषण्य नहीं है। देवताओंके आँखें ही नहीं हैं; प्रचण्ड क्षुधाकी पुकार उनके कानोंतक पहुँचती ही नहीं। किन्तु यह खाली कौरकी थैली आखिर कबतक मौनकी बीन बजाती रहेगी ! नैराश्यकी आगकी लोल लोल जिह्वाएँ ऊपर उठ रही हैं। उसका गर्जन कितना भीषण है :—

देवरबोंदु
गोरिय कट्टि
धर्मद धूमके
बेंकियनिश्कि
गणगणबारिसि
प्राणबगंटेय,

साविन नोविगे
 कलमलवेदु
 नेलवनेल्ला
 तुत्तुवेनेदु
 गदरुत्तिहुदु
 गर्जिसुत्तिहुदु
 बडवर बग्गरड
 तुत्तिन चीलव
 ओळगिन ओळगिन
 ओळवनियोदु !

[दीन-दरिद्रोंके हृदयान्तरालसे एक ध्वनि उठकर गर्जन कर रही है—ईश्वरकी एक समाधि बनाऊँगी, धर्मके धूपकी आग लगाऊँगी। प्राणोका घण्टा झनझनाकर बजाऊँगी। मृत्यु पीड़ासे तड़प-तड़पकर सारी धरतीको ही कवलित कर लूँगी।]

छोटे-छोटे चरणोमे जीवनके कठोर एवं घोर सत्यकी कितनी वास्तविक अभिव्यक्ति है !

‘अन्धकाञ्चन नृत्य कर रहा था’, ‘भिक्षुक’ ‘बाल विधवा’ आदि प्रगतिवादी कविताओंमे सामाजिक विषमतापर कविका क्षोभ स्फुलिंगोंके रूपमे फूट पड़ा है।

उपर्युक्त कविताओमे हमारे समाजकी आर्थिक एवं धार्मिक विषमताओं पर कटाक्ष किया गया है। विश्वभरमें राष्ट्रनेताओंका स्वार्थ अखण्ड ताण्डव कर रहा है। उनकी अदम्य स्वार्थलालसाके कारण कितना बड़ा नरमेघ हो रहा है ! विश्वभरमें अशान्ति फैल रही है। उसको देखकर कविका मन आकुल-व्याकुल हो रहा है, क्षुब्ध हो रहा है। दासताकी शृंखलाको चकनाचूर करनेके लिए कवि नरबलि माँगता है। नरबलि चढाये बिना काली तृप्त नहीं होती। इसकी कठोर अभिव्यक्ति ‘नरबलि’ मे है :—

‘इदुवे काळिय पुजेयु शुद्ध !

इदक्के हुंवरु एंवरु युद्ध ! !

[यही कालीकी शुद्ध पूजा है, इसीको मूर्ख लोग युद्ध कहते हैं।]

बेन्द्रेजीकी राष्ट्रीय कविताओंमें निर्वीर्योंमे भी नवचैतन्य भरनेकी अद्भुत शक्ति है। ‘तरुण तपस्वी’ ‘तैतीस करोड़’ ‘श्रद्धानन्द’ आदि कविताओंमें राष्ट्रीय उद्बोधनकी चेष्टा है।

कर्नाटक-एकीकरण कविका बहुत दिनोंका स्वप्न रहा। कर्नाटककी जनताको विचारदास्यकी शृंखलाओंको तोड़नेका अमृत सन्देश देता है। हर कहीं स्वतन्त्रताका वातावरण है, किन्तु मानव मात्रके हाथोंमें शृंखलाएँ पड़ी हैं। इसकी कितनी मार्मिक व्यञ्जना है :—

मुगिलोळगो हक्किगेहादि,
कडलोळगो मीनके बीदि,
मलेगलोळगो होळेगूकोडि,
नमगळे एके बेड़ी।

[अनन्त आकाशमें पक्षियोंका पन्थ है, अपार सागरमें मीनकी वीचियाँ हैं, पर्वत प्रस्तरोंमें भी नदियोंके रास्ते हैं, किन्तु मानव मात्रके हाथोंमें बेड़ियाँ क्यों हैं ?]

मानवकी स्वच्छन्द बनकर विचरनेकी चिरन्तन लालसा कितनी मार्मिक है !

ये सब क्षोभ, आक्रोश सामयिक विस्फोट मात्र हैं, सञ्चारी मात्र हैं। कवि देशकालकी परिधियोसे मुक्त होकर चिरन्तन आनन्दके अन्वेषणमें जाता है। समग्र संसार में एक आनन्दमय लास्यको देखता है। सारा विश्व ही इस आनन्द नृत्यमें उन्मत्त हो निमग्न हो रहा है; किन्तु मानव मात्रको क्यों झंझटोंको मोल लेकर रोना है। प्रभुकी अनन्त निधियोंको लूटनेके लिए मानवका जन्म हुआ। अतः कवि लोगोको निमन्त्रण देता है कि आओ, हम सब उस अखण्ड आनन्दमय नृत्यमें भाग लें। अपनी प्रिय सखीको बुलाकर कवि कहता है :—

इरलारे नेकाकि

बा, बारऽ नझाकि

कुणियोणु बारऽ

कुणियोणु बा

[मैं एकाकी नहीं रह सकता, हे प्रिय सखी, आओ न, हम नाचेंगे ।]

जीवनके सुख-दुखोंको रहने दो, काञ्चनका ताण्डव भी वहीं रहे, लोकका संघर्ष भी भूल जाओ, चाहे रक्त बहे, रोनेवाले रोया करे, मरनेवाले मरा करे, आ वहीं हमारा एकमात्र सहारा है।

तीरद

तोरद

हाळु संसार अब

मीरिद भार अब

[इन सासारिक सुख-दुखोका कोई अन्त नहीं, वे हमारी पकड़में आनेवाले नहीं, उनका भार कौन वहन करे। चलो हम नाचें ।]

यह जीवन भ्रम है, इन चिन्ताओंका कोई अन्त नहीं; हम अपनी आँखें अन्दर दौड़ाएँगे, हृदय कलिकाओको विकसित कर इन्द्र धनुषी रंगोंसे हृदय समुद्रकी तरंगोंको रञ्जित करेंगे। नाट्यका आवेश सिरपर सवार होगा तो मैं, तुम, सुख-दुःख, जन्म-मृत्यु सब द्वन्द्व भाव मिट जाएँगे। इधर नाचनेवाले हमही नहीं, सारा विश्व ही रंगमंच बना है। इस अखण्ड नर्तन लीलामें भाग न लेनेवाला कोई नहीं, जड़, जंगम, चेतन अचेतन सब नाच रहे हैं :—

नेलबोडलु

कुणियलु

कुणि कुणियितु कडलु

मिडिदितु सिडिसिडिलु । कुणि . . .

हगलिण्ड ताळक्क

मुगियद काळक्क

जनुमगळ म्याळक्क । कुणि . . .

[चन्द्रके आकर्षणमे धरती लयबद्ध हो नाचने लगती है, उसके तालपर ताल देते हुए सागर उछलने लगता है। दिवारात्रि एक दूसरेके पीछे दौड़ते, नाचते है। उनके तालपर ताल देते हुए कालके अनन्त गर्भमे जन्म-मृत्यु एकके पीछे एक आते है। जल, थल, रवि, तारे, अनन्त आकाश, गम्भीर शून्य आदि सब नृत्यमग्न है। 'कुणितिलद जग हल्ल' (ऐसा कोई जग नहीं जो नहीं नाचता)। इस अनाद्यन्त नाट्य-समाधि-चेतनाचेतन परवश हो जाएँगे तो धरती-आकाश एक दूसरेके आलिंगनमें बद्ध हो जाते है, लोक नियत मृत्यु भी उस आनन्दके सामनेसे भाग जाती है। आनन्दका सागर उमड़-उमड़ पड़ता है।]

विश्वकी मूल नाड़ीकी पहिचान है इस कवितामें ! विश्वके अखण्ड ताण्डवमें हमको भी मिलानेवाली इस कवितामे बुद्धिभावोंका विद्युदालिगन हुआ है। यह कविता वास्तवमे विश्वभारतीका अलंकरण कर सकती है।

बेन्द्रेजीकी सर्वश्रेष्ठ कविताएँ उनके प्रकृतिगीत तथा रहस्यवादी गीतोंमें है। 'चतुर्मुख सौन्दर्य' मे महर्षि अरविन्द, की भाँति कविने भी सौन्दर्यके ऐन्द्रिक, काल्पनिक, चिन्तनात्मक तथा आध्यात्मिक-चार मुख बताये है। बेन्द्रेजीके काव्य-ब्रह्मके इन चारों मुखोंका सम्यक् दर्शन इनकी कविताओंमे होता है। प्रकृतिका स्मरण ही उनकी कविताओंका स्फुरण है, प्रकृतिका अनन्त सौन्दर्य उनकी कविताकी वस्तु है। 'माया किन्नरी', 'चित्तिय मलेय सञ्जे' 'बेळुदिगळ नोड', 'चिन्ता', 'ऋतुगान', 'बेळगु' 'मळे' 'हू' आदि कविताओंमे कविकी स्वच्छन्द कल्पनाकी तरंगमल्लिकाएँ बिखरा दी गई है। 'चिन्ता' का चित्र देखिए कितना नवीन है ! रूपक एवं प्रतिमाएँ प्रासानुप्रासोंके चरणोंपर कैसे नाच रही है !

उसके चेहरेपर अपार दैन्य है। किन्तु हृदयमें केवल शून्य है। मानो चिन्ता ही मूर्तिमान हो आई हो। उसकी आँखे अन्धकारकी बैटरी बनी हैं, उसका माथा श्मशान बना है। गतयुगकी तारिकाकी भाँति वह आती है :—

उरिय सीरेयनुट्ट

बेंकि गुप्पसदोट्ट

धीरे गम्भीरे नीनारे अन्ये ?

[ज्वालाका चीर पहने हुए, अग्निका कंचुकी पहने धीरा, गम्भीरा रमणी यह अन्या तू कौन है ?]

वह भी उसी प्रकारका उत्तर देती है। जगके जीवधारियोंका उर ही मेरा अन्तःपुर है, उधर मैं सुईसे कढ़ाईका काम कर रही हूँ।

मानवीकरणके द्वारा कवि 'चिन्ता' चित्रावलीको हमारे सामने रखता है। सद्भावोंके चित्रणमे बेन्द्रेजीकी रूपक-शक्ति अद्भुत कार्य करती है।

बेन्द्रेजी प्रकृतिके अनन्य आराधक है। प्रकृतिको बेन्द्रेजीने माताके रूपमें देखा है, शिशुके रूपमें देखा है। प्रकृति देवी अपनी अनोखी सम्पदा, सुषमा हमपर वार रही है; कविको सर्वत्र वैदिक ऋषियोंकी भाँति मधु वर्षा होती दिखाई देती है, मन्द-मन्द गन्ध वह मधु ले आता है, सिन्धु लहरियाँ मधुको उँडेल रही है, वनस्पतियाँ मधुवृष्टि कर रही है, अनन्त आकाश मधु वर्षा कर रहा है। संसारमे चतुर्दिक मधुका महापूर ही बह रहा है। किन्तु मानव स्वार्थके कारण, अज्ञानके कारण आँखोंके होते हुए भी अन्धा बना है, अम्बिकातनयदत्त प्रकृतिको प्रभुका 'प्रेमपत्र' मानते हैं। ज्योतिर्मय लिपिमे वह लिखित है; किन्तु आश्चर्यकी बात है कि प्रकाण्ड पण्डित भी इस ढाई अक्षरके पत्रको नहीं पढ़ पाते !

प्रकृति माताके अलौकिक स्पर्शसे मानव दूर जा रहा है, चिरन्तन सुखकी ओर उसका ध्यान नहीं। इसका हृदयंगम विवेचन 'सुखस्पर्श' नामक कवितामें है। उसे पढ़कर पाठकोमे प्रकृतिदेवीके कोमल हस्तका मृदुल स्पर्श पानेकी लालसा जाग उठती है। किन्तु इस प्रकारका मौन निमन्त्रण प्रकृति हमें पल-पलमें देती रहती है। सन्ध्यारागकी छायामे धाराका सलिल लीलामग्न हो रहा है, अनन्त गगनकी प्रतिच्छाया जल पर पड़ रही है। उसे देखकर नक्षत्र अपनी सखीको आँखोंके द्वारा सैन करता है। इस प्रकार प्रकृतिमे सर्वत्र आनन्द है, किन्तु मानव उससे दूर जा रहा है। विषय पंकमे लोट रहा है, क्या ही विडम्बना है !

बेन्द्रेजीकी आत्मा प्रकृतिमे एकात्म हो गई है। व्यक्तजगतकी समस्त सुषमा उनके अंतरंगमें प्रतिबिम्बित है। प्रकृतिके कण-कणमें उस निखिलानन्द सन्दोह अरूपविहारीका आभास पाते हैं। इस कारण उनकी सौन्दर्य-दृष्टि उज्ज्वल बन पड़ी है। उषाका प्रकाश उनके लिए शक्तिका प्रतीक है, चन्द्रिका ममतामयी माताका क्षीर है। 'बेळदिगळ नोड' में इस प्रकारका भाव दृष्टिगोचर होता है। यह कविता उनकी सर्वश्रेष्ठ छायावादी कविताओंमेंसे एक है। दुलहिनकी आँखोंकी ज्योति, क्षीरसागर आदि प्रतिभाओंके द्वारा उस दुग्ध धवल चन्द्रिकामे आप्लावित जगका, हृदयहारी वर्णन करते हैं। चित्रा नक्षत्रकी वर्षाकी सन्ध्यामें कवि उपमाओंका कार्तिकोत्सव करता है। वह सन्ध्या अन्धप्रेमकी भाँति है। मूर्तामूर्तविधानकी यह कितनी मार्मिक अभिव्यक्ति है ! सामनेके टीलोंको मेघ अवगुण्ठन पहना रहा है तो बगलके टीलेपर धूप अपने अंगोंको फैला रही है। कुञ्ज-समीर आकर घासके मैदानकी माँग काढ़ रहा है। इस प्रकार प्रतिमाओंका एक उत्सव ही चलता है, किन्तु कितना सहज, कितना प्रदीप्त !

सावन कविका प्रिय महीना रहा है। 'श्रावण', 'श्रावणद वैभव' आदि बहुतसे गीत श्रावणपर ही लिखे गए हैं। श्रावणके कमनीय और भयंकर स्वरूपका चित्ताकर्षक वर्णन इन कविताओंमें है। श्रावण विश्वजीवियोंका आकर्षण है, उसके आते ही हर्ष छा जाता है, मूर्तिमान् मन्मथकी भाँति वह आ रहा है। श्रावण राजाका साम्राज्य जल-थल सब ओर छा जाता है, सावन काननोंमें आया, भू प्रदेशमें आया, समुद्रमें श्रावणका आगमन देखिए:—

“कडलिंगे बंतु श्रावणा। कुणिदहंग रावणा।

कुणिदाव गाळि। भैरवन रूप ताळि।”

[श्रावणके आगमनपर सागर भी रावणकी भाँति भैरव रूप धरे प्रभञ्जक नर्तन कर रहा है।]

श्रावण बंतु होळिगळिगे। अदे शुभगळिगे

होळिगे मस्त मळिगे।

आग्येद लग्न। अवराग भूमि मग्न।

[नदियोंमें सावनका आगमन एक शुभ घड़ी है ! उस शुभ घड़ीमें नदी और वर्षाका विवाह हुआ है, उस विवाहके आनन्दोत्सवमें धरती निमग्न है। धनधान्यसे, पेड़-पौधोंसे गर्भिणी बनी वसुन्धराकी चोटीमें फूल गूँथने आया है सावन !]

‘फूला है इमलीका पेड़’ नामक कवितामें भी इसी प्रकारकी प्रतिमाएँ आती उसकी है। शाखाएँ पल्लवित इन्द्रधनुषकी भाँति हैं, उसकी छायामें बैठे-बैठे कवि कल्पनाके पंख खोलता है। कविताके अन्तिम चरण कविताके उद्गमका रहस्य ही हमारे सामने रखते हैं:—

“कवि जीवनद व्यासर हरिसाक

हाड नुडिसाक

हेचिचगेनु बेक ?

ओंडु हूत हुणिसिमर साक ॥ हूतर ॥

[कवि जीवनकी बेजारीको, कलान्तिको, मिटानेके लिए गीत गानेके लिए और क्या चाहिए ? एक फूल। तिण्डी वृक्ष ही पर्याप्त है।]

प्रकृतिके सूक्ष्म-से-सूक्ष्म अंगोंके देखनेकी दृष्टि चाहिए, बस ! दृष्टि ही सृष्टिकी जननी है ! किन्तु वह दृष्टि कितनोमें है !

‘वसन्त मुख’, ‘पाहरगित्तिपक्क’ ‘पारिजात’ आदि कविताओंमें कविकी प्रकृति-पूजा, नाद-माधुरी आदि मूर्त हो उठी है।

बेन्द्रेजीके प्रेमगीतोंमें प्रेमके विश्वरूपका दर्शन होता है। वियोग पक्ष ही शृंगारमें श्रेष्ठ माना जाता है। प्रियकी प्राप्तिसे, प्राप्तिकी कामना अधिक मार्मिक

रहती है। मिलनमें मधुर प्रेमका अन्त हो जाता है, विरह ही प्रेमकी जागृत गति है। बेन्द्रेजीके जीवनकी छाप भी अिन गीतोंपर पड़ी है। उनका शृंगार करुणासे परिष्कृत हो भक्तिके रूपमें परिणत हो जाता है। 'एलुकन्तिकेयरु' (सप्त कन्यकाएँ) में काम प्रेमकी काव्यमय जिज्ञासा है। 'नानुबर्जन' 'पोरि पोरा' 'नगीनविलु' आदिमें प्रेमके संयोग पक्षका उद्दाम आवेग चित्रित है। 'अनन्त प्रणय' में समस्त-चराचर अलौकिक प्रेम माधुरीमें डूबे हैं। उत्तर ध्रुवसे दक्षिण ध्रुव तक अपनी ओर आकर्षित करनेवाली प्रेमकी वायु चल रही है। सूर्य-चन्द्र, प्रेमसे पुलकित हो रहे हैं, चन्द्र अभिसारके लिए जा रहा है। अक्षि निमीलन किए बिना नक्षत्रगण गगन-मण्डलमें विराज रहे हैं। इस प्रकार अखिल प्रकृतिको कवि प्रेमलीन दर्शाता है।

'सखीगीत' बेन्द्रेजीका सर्वश्रेष्ठ प्रेमाख्यानक खण्डकाव्य है, जिसमें कवि अपने ही जीवनकी भूमिकामें प्रेमका निरूपण करता है। पूर्वराग मात्र प्रकट है। कामनायक अपनी सखीको अपने पूर्व जीवनका आख्यान सुनाने लगता है, उसका आख्यान कटु है, किन्तु मधुर व्याख्याके साथ कवि वर्णन कर रहा है। अपने जीवनके आख्यान-निरूपणमें कवि सौन्दर्यकी अद्भुत मीमासा करता है। सौन्दर्य आँखकी वस्तु नहीं, आँखोंकी भी आँख है। रूप-लावण्यके द्वारा उसकी माप नहीं हो सकती, रूप-लावण्य उसके कण मात्र हैं। 'सखीगीत' में षड् ऋतुओंका वर्णन नूतन दृष्टिसे, किन्तु मार्मिक ढंगसे किया गया है। कविने इधर अपने जीवनके आधारपर सामान्य कौटुम्बिक जीवनके सुख-दुःखों, आशा-निराशाओकी चूनरी ही बुनी है। उसकी इन्द्रधनुषी कांति आन्तरिक शान्तिसे मिलकर अपूर्व आनन्द देती है। प्रणयके सभी सुखोंको देखकर परिपक्व होनेवाले जीवनकी अमर कहानी है। 'सखीगीत' नाद-माधुर्य, बिम्बयोजना आदिमें कविकी कला चरम सीमातक पहुँची है। कला तथा जीवन एक जीव हो चले हैं। आलोचकोंका कथन है कि 'सखीगीत' आधुनिक भारतीय साहित्यकी अमूल्य रत्न राशियोंमें एक है।

बेन्द्रेजीके आध्यात्मिक तथा रहस्यवादी गीतोंमें अखिल सृष्टिमें व्याप्त-अव्यक्त सत्ताका आभास, जीवदेवोंकी प्रणयानुभूति, गुप्तवाग्विलास, विरह-वेदना, आदिकी सरस एवं मार्मिक व्यञ्जना है। 'सच्चिदानन्द' में जीवात्मा तथा परमात्माका दार्शनिक संलाप परम्परागत रूपमें आया है; फिर भी उसमें हृदयस्पर्शिता है, अनन्त वेदनाकी अनुभूतिकी गहराई है। (कन्नड़के रहस्यवादी गीतोंमें वह एक जगमगाता हीरा है।) 'तुबि परमे', 'लावण्य' 'हृदय समुद्र' 'जोगि' आदि गीतोंमें इसी प्रकारकी वेदानुभूति मुखरित है। बेन्द्रेजीका कथन है कि जिस प्रकार ओंकार वेदान्तका मूल है, उसी प्रकार काव्य राज्यमें (प्रेम) बीज मन्त्र है। शान्त, सख्य, दास्य, वात्सल्य अवं मधुर, भक्तिके ये सब भाव इनकी कविताओंमें अभिव्यक्त हुए हैं। 'कबिरा कूता रामका, मुतिया मेरा नाऊँ' वाली पंक्तिसे इन पंक्तियोंका कितना भावसाम्य है, यह दर्शनीय है:—

नेरेय मंदिय मंदियल्लि तप्पिसिक्कौंडु

नेरेहोरेयलिह् एरेयनन्नु

गुरुतिसुवे मूसिद्दु, आलिसुवे किविगोट्टु

“कुरो-कुरो” यदेनगे करेयनेनु ?

[नायक, समीपके लोगोंकी भीड़में मैं पथभ्रष्ट हो भटक रहा हूँ, कहीं पास ही मेरा प्रभु है, उसीकी गन्धको सूँघ रहा हूँ, उसीकी वाणी सुन रहा हूँ। किन्तु वह दिखाई नहीं देता, क्या वह मुझे ‘कुरो, कुरो’ कहकर पुकार नहीं सकता ?]

‘एदेय ओक्कलिग’, ‘एल्लिरुवे राजगम्भीर’ आदिमे मिलन कातरताकी मार्मिक अभिव्यक्ति है। ‘मै’ और ‘तुम’, मैं निरालाजीकी कविताकी भाँति जीवदेवके अद्वैत सम्बन्धका चित्रण है :—

नानु नोट नीनु कण्णु

बेळकु नीड बा ।

नानु माये नीनु ईश

ओडि आड बा

[मैं दृश्य हूँ, तुम नेत्र हो, ज्योति देने आओ। मैं माया हूँ, तुम ईश हो, दौड़ते आ जाओ।]

‘लावण्य’ नामक कवितामे उस अखण्ड लावण्यमय प्रभुकी मिलनयामिनी, प्रयय-चेष्टा आदिका भव्य वर्णन है ! अपने प्रियतमके विद्युच्चुम्बन, कटाक्षमार आदिसे पुलकाकुल हो रही है आत्मसती। वाणी उस मौन भाषाके सामने व्यर्थ एवं निरुद्योगिनी-सी दिखाओ पड़ती है :—

नेक्किदेन्ननु निन्न

विद्युत् कटाक्षदलि अग्नि रुचिये ।

निन्न कुलुमेय कावु

इल्ल इल्लव ठावु नित्य शुचिये ॥

[तुमने अपने विद्युत्कटाक्षके द्वारा मुझे आहूत किया। हे अग्निरुचि, उसमें अग्निका स्वाद है। तेरे प्रेमके अग्निकुण्डका ताप देहके जिस भागमे नहीं है, क्या वह नित्य शुचि है ?]

‘महाप्रस्थान’ बेन्नेजीके आध्यत्मिक गीतोंमें एक जगमगाता हीरा है। महर्षि अरविन्दके ‘महाप्रस्थान’ के वर्णनमे कविकी प्रतिभा हैमाचल औन्नत्यपर पहुँची है, आत्मचेतना एवं लोकचेतनाके सोपानोंको पारकर ऊर्ध्वचेतनापर विचर रही है।

बेन्नेजीकी आरम्भिक कृतियोंमें—‘गरि’ ‘हाडु पाडु’ ‘नादलीले’ आदि में प्रगतिवादी तथा रहस्यवादी गीतोंके रहनेपर भी अधिकांश कविताओंमें सौन्दर्य पूजा,

कोमल रागानुभूति, अव्यक्त सत्ताके प्रति विस्मय, स्वप्नदर्शिता आदि भावनाओंकी प्रधानता है। 'उय्याले' 'सखीगीत' आदिमे कविकी सामाजिक प्रज्ञा अधिक सजग है। कविकी आत्म चेतना भी इन गीतोंमें जाग उठी है। 'गंगावतरण' में सामाजिक प्रज्ञा अधिक सजग है। पन्तजीकी भांति अम्बिकातनयदत्तने भी जीवनके उर्वर आँगनमें ज्योतिर्मय जीवन बरसानेकी प्रार्थना की है। कलुषित जीवनका क्षालनकर पावन बनानेके लिए गंगासे मर्त्यलोकमें अवतरण करनेकी प्रार्थना की है :—

इळिदु बा ताधि

इळिदु बा !

हरन जडैयिद

हरिय अडैयिद

ऋषिय तोडैयिद

नुसुळि बा

देव देवरनु तणिसि बा

दिग्दिगंतदलि हणिसि बा

चराचरगळिगे उणिसि बा

इळिदु बा ताधि

इळिदु बा !

[उतर आ, हे माँ ! हरके जटा जूटसे, हरिके चरणसे, ऋषिकी जंघासे उतर आ। देव, देवताओंको सन्तुष्ट कर आ, दिग्दिगंतोंको, आर्द्र करती आ। चराचरोंको जीवन दान देती आ, उतर आ हे माई !]

कोळैय तोळैववरु इल्ल बा

बेरे शक्तिगळु होल्ल बा

हीगे माडदिरु, अल्ल बा

नाडि नाडियनु तुत्त बा

नम्म नाडन्ने सुत्त बा

सत्त जनरझु एत्त बा

[हमारे जीवनका मालिन्य भेटनेवाला दूसरा कोई नहीं, ओ माँ, तू आ— अन्य शक्तियाँ त्याज्य हैं, असमर्थ हैं, तुझे इस समय हिचकना नहीं चाहिए। शीघ्र आ, नाड़ी-नाड़ीमें शक्ति सञ्चार करती आ, हमारे देशको अपनी चैतन्यदायिनी बाहुओंमें आलिंगन करती आ, मृत जनताका उद्धार करने आ !]

'हृदय समुद्र', 'सूर्यपान', 'मुक्तकण्ठ', 'चैत्यालय', 'नमन' से नवीनतम ग्रन्थ 'उत्तरायण' तककी कविताओंमें कवि ऊर्ध्वचेतनामें सञ्चार कर रहा है। यों तो कवि इसके पूर्व भी ऊर्ध्वचेतनाकी भावभूमिपर विचर चुका है, किन्तु वह उसका विहार मात्र था। किन्तु आज वह उसका सञ्चार बन गया है। कवि अधिक चिन्तक

बना है। आलोचकोंका कहना है कि कवि दर्शनके सुनहरे पिजड़ेमें बन्द हो गया है। उसकी कविता अब उन्मुक्त उड़ान नहीं भर पा रही है। अरविन्दके अतिमानववादसे कवि पहले ही प्रभावित था। किन्तु आज वह और भी उस ओर बढ़ा है। 'Our right & Natural road is towards the Summits', महर्षि अरविन्दकी यह उक्ति बेन्द्रेजीके जीवनमें चरितार्थ हुई है। उनकी कविता दार्शनिकतासे अधिक जटिल तथा बोझिल बन रही है, दुरूह बन रही है। आत्मोन्मुख मनोभूमि तथा ऊर्ध्वमुखी वृत्तियोंका समाहार 'चैत्यालय', 'उत्तरायण' आदि इधरकी कृतियोंमें द्रष्टव्य है। मानव जीवनका अधिपति है, दास नहीं है। आत्मा वसुन्धराकी ज्योतिर्मयी सन्तान है। मृत्यु तो ज्योतिर्मय जीवनकी भूमिका मात्र है। वसुन्धरा एक-न-एक दिन 'दिव' बनेगी, देव माता बनेगी। अरविन्द जैसे महद्भिन्न लोकाचेतनामें आत्मचेतना एवं ऊर्ध्वचेतनाकी जागृति द्वारा इस विश्व विकासमें योग देंगे। अतः सृष्टिके अलंकार मानवको यह समझना चाहिए कि धरित्री केवल मिट्टी नहीं है। हमें अन्तःचक्षुसे उसे देखना चाहिए। 'दिव्य जीवन' व्यतीत करनेकी अपेक्षा द्वेषमय, द्वन्द्वमय जीवन व्यतीत करनेमें मानवताका अपमान है :—

प्रकांड ताण्डववेतवके

लास्यवे साकु ईतवके

नंदा बीपद नडेमाडगळे संचरिसुव हागे

जीवजीवगळे कार्तिकोत्सवव मोदलागल मेगे।

ऋतुगळु नडेसलि रिगणकुणित

जीव नुडिसुतिरे वीणाववणित

मालेयु कोरळिगे जोतिरुवते हृदयके बंवातु

सुगियु नेलवने मुत्तितिरलि मधुलीलेगे सोतु।

[इस दिव्य, धरित्रीपर प्रकाण्ड ताण्डव क्यों करना है? प्रेमपूर्ण लास्य ही पर्याप्त है। रत्नदीपोंके भवन ही सञ्चार कर रहे हों, इस प्रकार जीवजीवोंका कार्तिकोत्सव आरम्भ होवे। ऋतुओंके नूपुर निनादित नाट्यका आरम्भ होवे, जीवोंकी हृदयवीणा स्पन्दित हो उठे। जिस प्रकार कण्ठमें माला उलझी रहती है, उसी प्रकार 'मधुमास' सर्वत्र धरित्रीकी प्रदक्षिणा करता रहे, अपनी ही मधुलीलापर मुग्ध बने।]

बेन्द्रेजीने नव नवोन्मेषशालिनी प्रतिभा तथा अजेयकल्पना शक्तिको लेकर काव्य लोकमें पदार्पण किया। उनकी शैली सत्वसम्पन्न तथा विविधतामयी है। उन्होंने छन्दोंमें जितने सफल प्रयोग किए, उतने कदाचित् ही और किसीने किये हों। उन्होंने बाह्यरूपको अन्तःसौन्दर्यका प्रतिबिम्ब मानकर भाषाकी आत्माको नया संस्कार देना चाहा। उनमें सूक्ष्मशब्द चेतना है। वे प्रत्येक शब्दके स्पन्दनको, धड़कनको सुन सकते हैं। उनकी कविता और लेखोंने भाषाको एक नया सौन्दर्य तथा गहराई दी

है, और वाचकको नया बोध तथा संस्कार। बेन्द्रेजीकी कविताकी विशेषता यह है वह 'लोकगीत' के तर्जपर लिखी गयी है। लोकगीतोंकी ज्योति भविष्यका आलोक है। लोकगीतोंमें जनजीवनकी, देशकी आत्माका स्पन्दन रहता है।* यह वे भली-भाँति जानते हैं। अतः उनकी कवितामें लोकगीतोंकी चेतना सहसुतन्त्री निःस्वनकी भाँति तरंगित होती रहती है। बोलचालकी भाषामें एक अद्भुत प्राण सञ्चार किया गया है। बेन्द्रेजी नादलोल है; उनके काव्यमें सौन्दर्य, विराट सौन्दर्य बनकर संगीतमय हो नृत्यकेलि रत रहता है। उनकी कविता लावण्य लतिकाकी भाँति मोहक पदविन्यास तथा शब्द नूपुरोका गुञ्जार करती आती है। उन्होंने गीतिकाके उदयकी रीतिका स्वयं वर्णन किया है:—

एनु एनु ? जेनु जेनु ? एने गुं गुं गाना

ओंकारद शंखनादकित किंचिदूना

कविय एकतान कवनबंते नादलीना

भृंगद बेत्नेरि बंतु कल्पना विलासा।

[क्या-क्या ?—मधु मधु !!—कह उठे इस प्रकार गुञ्जार करते हुए भृंगकी पीठपर चढ़कर कल्पना विलास आया, वह ओंकारके शंखनादसे किंचिदून है। कविकी 'एकनाद' कविता भी नादलीन है।

'मातु-मातु मयिसि बन्द नाददा नवनीता'—शब्द-शब्दके मन्थनसे नादका नवनीत उत्पन्न हो आया है। जयदेवके गीतगोविन्दकी भाँति बेन्द्रेजीकी कविताएँ पाञ्चाली शैलीसे मण्डित हैं। बेन्द्रेजीके काव्यकी श्रद्धा उसकी अभिव्यक्तिमें है। 'Music is the language of the soul' वाली उक्ति उनकी कविताओंमें सार्थक बनती है। सरल से सरल शब्दोंमें रसकी अमन्द मन्दाकिनी प्रवाहित करनेकी अद्भुत क्षमता उनमें है। श्लेष, रूपक, प्रतिमाके बिना वे बोलना ही नहीं जानते। प्रो. वी. सीतारामय्याजीने ठीक ही कहा है—'The realm of symbolism in Kannada poetry peculiarly belongs to Mr. Bendre.' प्रो. गोककने इसका समर्थन किया है—'His poetry is a storehouse of symbols', नाद माधुरी तथा भाव सौन्दर्यका अप्रतिम संगम बेन्द्रेजीकी शैलीकी विशेषता है। प्रो. गोककने उनको 'Wizards of modern Kannada poetry' कहा है। मानव हृदयसे निःसृत प्रत्येक स्वर लहरीको इन्द्र धनुषी रंगोंसे तरंगित करनेकी अद्भुत क्षमता उनमें है। आलोचकोंका कहना है कि बेन्द्रेजीकी इधरकी कविताओंमें अस्पष्टता अधिक हो गई

* 'The poetry of people takes its life from the people's speech and in turn gives life to it and represents the highest point of consciousness.—J. S. Eliot.

है, कल्पना अधिक दुरूह बनती जा रही है; उनकी कविता अधिकाधिक निगूढ़ बन रही है। किन्तु क्या अस्पष्टता, गूढ़ता काव्यमें अतना दोष बनेगी, यह विचारणीय है। D. E. S. Macwell ने एक ओर कहा है—‘A sense of mystery is at the root of all romantic poetry. Something of it must be present in the poetry, any tradition that is to be called great.’”

इसमें सन्देह नहीं कि बेन्द्रेजी बीसवीं शताब्दीके विश्वके महान कवियोंमें एक है। उनकी कवितामें अनुभूति, कल्पना तथा चिन्तनका त्रिवेणी-संगम हुआ है। वे रस सिद्ध कवीश्वरोंमें एक है। लोकगीतोंके गीत सत्व, छन्द विलास तथा चित्रशक्तिके प्रतिमा-विधानको अपनाकर जीवनकी करुणा तथा आनन्दको भी सम्मिलित कर उन्होंने एक काव्य मन्दिरका निर्माण किया है तथा उसपर आध्यात्मिकताका हेम-शिखर चढ़ाया है।

पन्त आदि कवियोंमें वस्तुजगत-भावजगत तथा सूक्ष्म जगत—इस प्रकारके हर सोपानोंके आरोहणको हम देख सकते हैं, किन्तु महादेवीकी भाँति बेन्द्रेजी आरम्भसे भाव जगतसे भी आगेकी सूक्ष्मता, अन्तर्जगतकी ओर, चैतन्यके अन्तःस्वरूपकी ओर उन्मुख रहे हैं।

कन्नड़ काव्य क्षेत्रमें बेन्द्रेजी एक युगप्रवर्तक व्यक्तित्व लेकर आए। साहित्य-को नया मोड़ देनेवाला अतना महान् व्यक्तित्व विश्वभरमें मुष्टिमेय है। बेन्द्रेजी न केवल एक कलाकार तथा दार्शनिक है, वरन् उनका सहज व सरल व्यक्तित्व काव्य-मन्दाकिनी की स्निग्धतासे ओतप्रोत है, स्वयं एक महाकाव्यका उपादान बन सकता है। बेन्द्रेजी कविता नहीं लिखते, जीते हैं। काव्य एवं जीवन उनके लिए भिन्न-भिन्न वस्तुएँ नहीं हैं। काव्यके उद्देश्यके बारेमें उनका वक्तव्य कितना उद्बोधक है :—

“मेरा दृढ़ विश्वास है कि यदि किसी भी सृष्टिको हृदयस्थ होकर रहना हो तो उसमें आकर्षण वाञ्छनीय है। आकर्षक होनेपर भी उसे चिरञ्जीवी बनाना हो तो उसमें महासत्त्वका रहना अनिवार्य है। उसे निरन्तर रम्यतासे आपूरित होना हो तो उसमें विविधमुखी सौन्दर्यकी आवश्यकता है। इस प्रकार सजीव काव्य अपने आकर्षणके कारण हृदयमें प्रविष्ट होकर, अपने सत्त्वसे उज्जीवित होकर, अपने सौन्दर्यके कारण प्रवृद्ध हो, दृष्टिमें लीन हो कविकी भाँति सहृदयको भी यदि दार्शनिक नहीं बनायेगा तो वह काव्य सम्पूर्ण रूपसे सफल नहीं होगा।”

किन्तु यह विश्वास केवल विश्वास मात्र नहीं, कविका श्वास रहा है :—

“मेरे लोकगीतोंमें धरित्रीके गर्भमें स्थित मूलके सञ्चलनकी अनुभूति होती है तो मेरी चतुर्दशदी (Sonnet) ‘सीस, पद्य’ तथा अन्य प्रकारकी कविताओं में ऊर्ध्वमूल, अधःशाखावाली प्रकृति मेरे हृदयको स्पन्दित करती है। ऐसा लगता

हैं कि एक प्रकारसे मेरे लिए साहित्य शास्त्र बना है, धर्म बना है, योग बना है, अधिक क्यों—जीवन ही बना है !”

महाकवि बेन्द्रेजीने अपनी अनवरत काव्य-साधनाके द्वारा कन्नड़ साहित्यको अमूल्य नई शक्ति दी है। उन्होंने कन्नड़के गीत काव्यको जीवन शक्ति देनेमें जिस प्रतिभाका परिचय दिया है, वह कन्नड़के लिए गौरवकी बात है। बेन्द्रेजीने जब काव्य जीवनमें पदार्पण किया तब कन्नड़ भाषा तुतला रही थी; किन्तु आज बेन्द्रे जैसे रससिद्ध कविजनोके कारण वह प्रबल से प्रबलतम भावोंकी वाहिनी बनी है; वह आज विश्वकी किसी भी समृद्ध भाषासे टक्कर ले सकती है।



कन्नड़ साहित्य परिचय

[प्रारम्भसे १९२० तक]

कन्नड़ भाषा

और

उसका साहित्य



कन्नड़ 'पञ्च द्रविड़' कही जानेवाली द्रविड़ परिवारकी भाषाओंमेंसे एक है। तमिल, तेलुगु एवं मलयाळम् इस परिवारकी अन्य भाषाएँ हैं। दक्षिण कन्नड़में बोली जानेवाली 'तुळु' को भी इन भाषाओंके साथ मिलाकर प्राचीन पण्डितोंने इस परिवारको 'पञ्च द्रविड़' कहा था। किन्तु 'तुळु' कन्नड़की एक बोली है, स्वतन्त्र भाषा नहीं है। कुर्गकी 'कोडगु' तथा नीलगिरिकी पहाड़ी जातियोंमें बोली जानेवाली तोड, कोट, बडग, इरुळ आदि कन्नड़की बोलियाँ हैं। कन्नड़ भाषा-भाषियोंकी संख्या दो करोड़से भी अधिक है। एकीकृत कर्नाटक (मैसूर राज्य) में पुराने बम्बई प्रान्तके बीजापुर, धारवाड़, कारवार तथा बेलगाँव जिले, मद्रासके बल्लारी, दक्षिण कन्नड़ जिले, हैदराबादके बीदर, रायचूर, एवं गुलबर्गा, तथा कोडगु (कुर्ग) के साथ मैसूरके नौ जिले भी सम्मिलित हैं, जिसका विस्तार करीब २५००० वर्गमील है। प्राचीनताकी दृष्टिसे तो भारतमें तमिलके पश्चात् कन्नड़का ही स्थान है। कर्नाटककी अपनी एक उज्ज्वल सांस्कृतिक परम्परा है। कदम्ब, राष्ट्रकूट, चालुक्य, होयसल एवं विजयनगरके साम्राज्योंका इतिहास कन्नड़ियोंके गौरव-सौरभका प्रसार करता है। मध्व, सायण, माधव (विद्यारण्य) आदि

दार्शनिक, बसव, प्रभुदेव, पुरन्दरदास, कनकदास, सर्वज्ञ आदि सन्तजन जौहरी, पम्प, रन्न, कुमार व्यास आदि युगकवि, बादामी, बेलूर, हलेयबीडु, श्रवणबेळगोळ आदिके दिव्य मन्दिर, कर्नाटक संगीत आदि भारतीय सस्कृतिके कार्तिकोत्सवके जग-मगाते रत्नदीप है।

कन्नड साहित्यका आरम्भ कब हुआ, यह निश्चित रूपसे बताना बहुत ही कठिन है। 'कर्णाटक' शब्दका अुल्लेख महाभारत, वराहमिहिरकी 'बृहत् संहिता' सोमदेवका 'कथासरित्सागर' गुणाढ्यकी 'बृहत्कथा' आदिमे हुआ है। ईसवीकी दूसरी 'शताब्दी' मे निम्न इजिप्तके आक्सिरिकसमे प्राप्त एक प्रहसनमे कन्नडके शब्द प्रयुक्त हुए है। ग्रीक प्रवासी टालेमीने (१५० ई.) कर्णाटकके अनेक नगरोंका उल्लेख किया है। गाथा सप्तशती (२०० ई.), हेमचन्द्रकी 'देशिनाममाला' आदि ग्रन्थोंमे बहुतसे कन्नड शब्द सम्मिलित है। इस प्रकार ग्रन्थोंके रूपमे न सही, व्यावहारिक रूपमे ईसाकी प्रारम्भिक शताब्दियोंमे ही कन्नड पनपने लगी थी। ग्रन्थोंमे प्रयुक्त कन्नडका प्रथम परिचय हमे 'हलिमडी' के शिलालेख (४५० ई.) से होता है। यह शिलालेख समग्र द्रविड़ भाषाओंमे प्राचीनतम है। इसमे कन्नड एवं सस्कृत शब्दोंका मणि काञ्चन सयोग है। यह एक दानपत्रका लेख है। इसकी भाषा काफी शक्तिशालिनी है, उसमे एक पूर्व प्रचलित परम्पराके दर्शन होते है। शैलीमे प्रवाह है।

कन्नड साहित्यमे शिलालेख सम्बन्धी बृहत् सम्पदा है जिसका सम्यक अध्ययन अभी तक नही हो पाया है। इन शिलालेखों तथा ताम्रपत्रोंकी संख्या हजारोंकी होगी। इन शिलालेखोंके साहित्यका अधिकांश भाग उत्कृष्ट कविताओसे युक्त है। प्रत्येक शिलालेख एक लघु काव्यकी भाँति है। इनकी शैली प्रौढ़ एवं परिमार्जित है। श्रवण बेळगोळका अधोलिखित शिलालेख (६००-७०० ई.) तत्कालीन साहित्य एवं भाषाकी प्रौढ़ताका परिचायक है :—

सुरचापं बोले विद्युल्लतेगळ तेरबोल्मंजुबोल्तोरी बेंगं
पिरिगु श्रीरूप लीला धन विभव महाराशिगळ् निल्लवागं ।
परमार्थ मेच्चे नानीधरणिगुळिरवानेंदु संन्यासनगे
शुशु सत्वन नदिसेन प्रवर मुनिवरन् देवलोकवके संदान् ॥

[यह संसार कितना क्षणभंगुर है ! इसमें कोई भी शाश्वत नही है, सभी नश्वर है। इस संसारकी अखण्ड श्री, अनिन्द्य रूप-सौन्दर्य, अप्रमेय धन-वैभव, विलास सब नाशवान है। इन्द्रचापकी भाँति क्षणभंगुर है, विद्युल्लताकी भाँति चञ्चल एवं क्षणिक है, कुड्झट्टिकाकी भाँति अल्पायु है। इस प्रकार इन सासारिक सुखोपभोगोंको नश्वर पाकर नन्दिसेन प्रवरमुनि वैराग्यकी ओर झुक पडा। प्रवज्या ग्रहणकर उस महानुभावने स्वर्गको प्रस्थान किया।]

स्पष्ट है कि ऊपरकी कविताकी भाषा अत्यधिक सस्कृत पर आधारित है; किन्तु इसके साथ कन्नड़में कितनी ही संस्कृत प्रभाव मुक्त स्थानीय शैलियाँ तथा

स्वरूप लोकगीतोंमें प्राप्त होते हैं। लोकगीतों और लोक नाटकोंको विभिन्न रूपोंमें गीगी पद, लावणी, तथा यक्षगान, परिजात आदि उल्लेखनीय है।

कन्नड़का प्राचीनतम उपलब्ध ग्रन्थ 'कविराजमार्ग' है। राष्ट्रकूट नरेश नृपतुंग, अमोघवर्ष (२१४-२७७ ई.) या उसका सभासद श्रीविजय इसका रचयिता माना जाता है। दण्डीके 'काव्यादर्श' के आधारपर लिखा हुआ यह लाक्षणिक ग्रन्थ कन्नड़ भाषा, साहित्य, इतिहास, सस्कृति तथा जनजीवनका प्रामाणिक परिचय देनेवाला रत्नदर्पण है। यह तो मानी हुई बात है कि लक्ष्य ग्रन्थोंके पश्चात् ही लाक्षणिक ग्रन्थोंकी रचना होती है। इसके अतिरिक्त कविराजमार्गकारने अपने ग्रन्थमें पूर्वसूरियोंका अल्लेख किया है, लक्षणोंके उदाहरणके तौरपर पूर्वकवियोंकी कविताओंके उद्धरण भी दिए हैं। कन्नड़की किसी प्राचीन एव अज्ञात रामायणके कुछ पद्य भी उद्धृत हैं। लेखकने विमलोदय, नागार्जुन, जयबन्धु, दुर्विनीत आदि गद्यकार तथा श्रीविजय, कवीश्वर, लोकपाल आदि पद्यकारोंका भी उल्लेख किया है। किन्तु दुर्भाग्यकी बात है कि उनकी कृतियोंकी अब कोई जानकारी नहीं मिलती। चेंत्ताण, बेदडे (वैदण्डिका—Lyric) आदि तत्कालीन पद्य शैलियोंका भी उल्लेख हुआ है। इसके अतिरिक्त कविराजमार्गकारने प्राचीन कन्नड़की दक्षिण एवं उत्तर शैलियोंको भी सूचित किया है।

इस ग्रन्थके तीन परिच्छेद हैं—(१) दोषानुवर्णन निर्णय, (२) शब्दालंकार, (३) अर्थालंकार। प्रथम परिच्छेदमें काव्य दोषोंकी विवेचना करते हुए दिग्दर्शनार्थ कुछ उदाहरण भी दिए गए हैं। द्वितीय परिच्छेदमें एकाक्षर, द्वाक्षर, चित्र, यमक आदिके लक्षण तथा उदाहरण हैं। तृतीय परिच्छेदमें पैंतीस अलंकारोंके लक्ष्य-लक्षण वर्णित हैं।

कविराजमार्गके पश्चात् कन्नड़ साहित्य धारा अक्षुण्ण रूपसे प्रवाहित होने लगती है। इसकी विभिन्न धाराओंके नामकरण तथा काल विभाजनके बारेमें विद्वान एकमत नहीं है। प्राक्तनविमर्श विचक्षण, महामहोपाध्याय, रावबहादुर रा. नरसिंहाचार्यजीने धर्मके आधारपर जैन साहित्य धारा, वीरशैव साहित्य धारा, एव ब्राह्मण साहित्य धारा—इस प्रकार इस वाहिनीको तीन धाराओंमें बाँटा था। डॉ. रं. श्री. मुगलीका अद्यतन काल-विभाजन यों है :—

- (१) पम्प पूर्वयुग (ईसवी सन्के आरम्भसे ९५० ई. तक)
- (२) पम्प युग (९५० ई.—११५० तक)
- (३) बसवं युग (११५० ई.—१५०० तक)
- (४) कुमार व्यास युग (१५०० ई.—१९०० तक)
- (५) आधुनिक युग (१९०० ई.—आजतक)

पम्प पूर्वयुगका अधिकांश साहित्य अनुपलब्ध है। इस युगके अज्ञात कवियोंका उल्लेख, उनकी कृतियोंकी कविताओंका उदाहरण यत्र-तत्र पूर्व

कवि स्तवावसरोंमें तथा लाक्षणिक ग्रन्थोंमें प्राप्त होते हैं। अधिकांश उपलब्ध सामग्री शिलालेखोंकी है, जिसमें तत्कालीन धार्मिक सहिष्णुताके ज्वलन्त आदर्शोंकी झाँकी मिलती है, साथ ही अपने देश एवं देश बान्धवोंकी रक्षाके लिए मर मिटने-वाले वीरोंकी, दानवीरोंकी, त्याग वीरोंकी गौरव गरिमाका गान है। इन शिलालेखोंको हम तीन भागोंमें बाँट सकते हैं :—१. वीरगल्लुगळु (वीर हुतात्माओंके स्मारक शिलालेख), २. दत्ति (दानपत्र), ३. निरिधि, मासति (‘सल्लेखन व्रत’ से देहत्याग करनेवालोंकी सती होनेवाली वीर नारियोंकी प्रशस्तियाँ)। इस समयके धार्मिक जीवनमें जैन, वैष्णव, शैव एवं बौद्ध धर्मोंकी अद्भुत सहिष्णुता दिखाई देती है। एक वैदिक ब्राह्मणका जैन मन्दिरोंको दान देनेका उल्लेख ९०२ ई. के एक शिलालेखमें मिलता है, एक ही राजाके जैन, वैष्णव एवं शैव मन्दिरोंको दान देना आदिके उल्लेख तो असंख्य हैं। इस समयकी सर्वधर्म समन्वय मनोवृत्तिका उल्लेख करते हुए डॉ. अल्लेकरने ठीक ही कहा है।* यह समन्वय कर्नाटक संस्कृतिका सर्वस्व है। यही समन्वयात्मिका मनोवृत्ति आगेकी शताब्दियोंमें भी बढ़ती है। इन शिलालेखोंकी भाषा अत्यन्त प्रौढ़ एवं परिनिष्ठित है।

पम्प पूर्वयुगकी उपलब्ध कृतियोंमें ‘कविराजमार्ग’ के पश्चात् ‘वड्डाराधने’ का नाम आता है। ‘वड्डाराधने’ के समयके बारेमें विद्वानोंमें काफी विवाद है। श्री गोविन्द पै तो उसे षष्ठ शतककी मानते हैं। किन्तु डॉ. ए. एन. उपाध्ये, तथा प्रो. डी. एल. नरसिंहाचार्य उसे करीब ९२० ईसवीकी मानते हैं। ‘वड्डाराधने हरिषेणकी ‘भगवती आराधना’ के आधारपर लिखा हुआ एक प्रौढ़ गद्य ग्रन्थ है। इसका प्रणेता शिवकोट्याचार्य माना जाता है। इसमें अहिंसा धर्म बोधक उन्नीस जैन धार्मिक कथाएँ हैं। ‘वड्डाराधने’ की ख्याति उसकी शैली एवं कथा कौशलपर है। इसमें प्राचीन कन्नड़ गद्यके सुन्दर नमूनेके दर्शन होते हैं। भाषा इतनी मुहावरे-दार, इतनी चलती एवं टकसाली है कि उसे देखकर दंग रह जाना पड़ता है। इतने प्राचीन समयमें ऐसी रोचक एवं मार्मिक शैलीको देखकर उर्दूके टकसाली गद्यका स्मरण हो आश्चर्य होता है। प्रो. डी. एल. नरसिंहाचार्यजीका तो यहाँ तक कथन है कि आज भी उसकी शैली अनुपम है।

कन्नड़ साहित्यकी यह विशेषता ही कहनी चाहिए कि उसमें गद्य भी उतना है जितना पद्य। गद्य एवं पद्य दोनोंका आविर्भाव करीब-करीब एक ही समय हुआ है।

* Wide and Sympathetic toleration was the general characteristic of our age.

—D. A. S. Altekar: ‘Rastrakutas & Their Times’- Pp 272.

पम्पयुगकी विशेषताओंको समझनेके पूर्व हम पहले कर्नाटककी तत्कालीन ऐतिहासिक पृष्ठभूमिसे परिचित हो लें।

इतिहासके उषःकालसे ही कर्नाटक अनेक सामन्ती राजघरानोंकी जन्म-भूमि रही है। इन राजाओंमें देशपर प्रभुत्वके लिए पारस्परिक युद्ध छिड़े रहते थे। चालुक्य एवं पल्लव, चोळ एवं गंग आदिके बीच संग्राम होता रहा था। इन राजकीय परिस्थितियोंसे तत्कालीन सामाजिक परिस्थिति भी प्रभावित थी। अपने आश्रयदाताके लिए अपने प्राणों तकको हँसते-हँसते होम कर देनेवाले युद्धवीरों, दानवीरों एवं त्यागवीरोंके दर्शन इसी समय होते हैं।

इस समयके कवि हिन्दीके वीरगाथा कालीन कवियोंकी भाँति असि और मसि—दोनोंके सम्मिश्र थे। कन्नड़का आदि कवि पम्प चालुक्य नरेश अरिकेसरीका दण्ड-नायक था। नागवर्मन्ने अपनी भुजा-असिके लिए रणलक्ष्मीसे वीरश्री प्रदान करनेकी प्रार्थना की है। गद्यकार चावुण्डराय समर परशुराम भी था।

वीर गाथा कालकी भाँति इस युगमें भी वीर रस प्रधान काव्योंकी तथा विजय काव्योंकी प्रधानता है। पम्पने 'विक्रमार्जुन विजय' लिखा तो रन्नने 'साहस भीम विजय' और पोन्नने 'भुवनैकरामाभ्युदय' लिखा। इसके साथ-साथ शान्त रस प्रधान काव्योंकी भी रचना होती है। इस युगकी विशेषताओंको निम्न-लिखित रूपमें प्रकट कर सकते हैं :—

(१) इस युगमें जैनियोंने प्रधान रूपसे काव्य रचना की है। इसी कारण इस युगको रा. नरसिंहाचार्यजीने जैनयुगसे अभिहित किया था।

(२) प्रत्येक कविने एक लौकिक तथा एक आगमिक, इस प्रकार दो काव्योंकी रचना की है। लौकिक काव्योंमें वीर एवं रौद्र रस की प्रधानता है तो दूसरे प्रकारके काव्योंमें अद्भुत एवं शान्त रसकी प्रधानता है।

(३) अधिकांश कवियोंने चम्पू शैलीमें काव्य रचना की है। चम्पू शैलीमें "देसी" (Popular trend of literature) से अधिक संस्कृतनिष्ठ मार्ग शैली " (Classical trend) की प्रधानता है।

(४) पम्प आदि कवियोंने अपने लौकिक काव्योंमें काव्य नायकोंके साथ अपने आश्रयदाताओंका समीकरण किया है। फलतः एक प्रकारके समासोक्ति काव्यकी परम्परा गोचर होती है। इन कृतियोंमें अद्भुत एवं शान्त रसकी प्रधानता है।

(६) चावुण्डराय पुराण' आदि गद्य ग्रन्थोंकी रचना भी इसी समय होती है।

(७) काव्य ग्रन्थोंके साथ साथ ज्योतिष, व्याकरण, पिंगल, आदि शास्त्रीय विषयोंपर भी ग्रन्थ रचना हुई।

पम्प युग कन्नड़ साहित्यका सुवर्ण युग है। अब हम इस युगके प्रमुख कवियोंका विहंगावलोकन करेंगे। पम्प, पोन्न एवं रन्न कन्नड़के रत्नत्रय कहलाते हैं।

पम्प (१४१ ई.-):—पम्प इस युगके ही कवि नहीं, युग-युगके कवि है। वे कन्नड़के कविकुल गुरु हैं; आदिकवि हैं। विद्वानोंका कहना है कि दसवीं शताब्दीमें भारतकी किसी भी भाषामें इतना महान् कवि नहीं हुआ है। कवि नागराजने ठीक ही कहा है—‘पसरिय कन्नडकोडेयनोर्वेने सत्कवि पम्पनावग’, (विस्तृत कर्नाटक-का एकछत्र सम्राट् पम्प ही है।)। यद्यपि कन्नड़का प्रथम उपलब्ध ग्रन्थ ‘कविराज मार्ग’ है; तथापि वह लाक्षणिक ग्रन्थ है, रसात्मक काव्य नहीं है। अतः पम्पकी कृतियाँ प्रथम काव्य ग्रन्थ हैं। पम्प कन्नड़के वाल्मीकि हैं।

पम्प जैन धर्मावलम्बी ब्राह्मण थे। उनके प्रपितामहके पिता माधव सोमयाजि बड़े-बड़े यज्ञ तथा कृच्छ्र साधनाओंके कारण प्रसिद्ध थे। पम्पके पिता अभिरामदेवने जैन धर्मको ग्रहण कर लिया था। इस प्रकार वैदिक संस्कृतिके साथ-साथ पम्पके जीवनमें जैन संस्कार भी घुले-मिले थे। धर्मान्धता नहीं थी। उनका हृदय दोनों संस्कृतियोंके प्रति उदार था। उच्च हृदयके इसी औदार्यके दर्शन हमें इनके काव्यमें भी मिलते हैं।

पम्प चालुक्य नरेश अरिकेसरी द्वितीयके दरबारमें रहते थे। नृपतिने कविको ‘कवितागुणार्णव’ का विरुद दिया था। इनके दो ग्रन्थ ‘विक्रमार्जुन विजय’ तथा ‘आदिपुराण’ कन्नड सरस्वतीके नयनयुग्म हैं। प्रथम कृति उनकी लौकिक कृति है तो दूसरा आगमिक ग्रन्थ है। पम्पने स्वयं कहा है—‘इधर (विक्रमार्जुन विजय अथवा पम्प भारत) मैं लौकिक धर्मकी प्रतिष्ठा करूँगा और उधर (आदिपुराणमें) जिनागमका निरूपण करूँगा।

‘आदिपुराण’ पम्पकी प्रथम कृति है। इसमें काव्य धर्म एवं मत धर्मका हृदयगम सगम हुआ है। जिनसेनाचार्यके ‘पूर्वपुराण’ के आधारपर लिखा हुआ यह चम्पू काव्य प्रथम तीर्थंकर वृषभदेवकी कथाका निरूपण करता है। कथावस्तु, भाव सम्पत्ति, दर्शन इत्यादिमें आदिपुराण पूर्वपुराणका ऋणी है; किन्तु ‘आदिपुराण’ और ‘पूर्वपुराण’ में अन्तर यह है कि पूर्वपुराण, पुराण अधिक है, काव्य कम। आदिपुराण रसात्मक काव्य है, यद्यपि इसमें भी पौराणिक अंश न्यून नहीं है। आदिपुराण एक प्रौढ़ चम्पू काव्य है। पूर्वपुराणका अति विस्तार इधर नहीं आ पाया है। वह एक बृहत् अटवी है, आदिपुराण एक सुन्दर उपवन है। ‘आदिपुराण’ एक बद्धजीवके भवावलियोंमें भ्रमण करते हुए, तपस्यामें तपते हुए साधनाकी तरतम सोपान श्रेणियोंके आरोहण द्वारा कर्म क्षालनकर ‘सिद्ध जिन’ बननेका रम्य इतिहास है। मानवीय धर्म, जैन धर्म एवं काव्य धर्मकी त्रिवेणी है आदिपुराण। मार्मिक स्थलोंकी पहचानमें पम्प अद्वितीय है। पुरु परमेश्वरके वैराग्य ग्रहण करनेका दृश्य, ललितांग-देवकी वियोग वेदना, भरत बाहुबलि व्यायोग आदि इस काव्य शैलके उत्तुंग शिखर हैं।

सबसे मनोहर दृश्य पुरु परमेश्वरके वैराग्य ग्रहण करनेका है, जब वह अपने अन्तिम जन्ममें सुखकी परम सीमापर पहुँचा है। पुरुदेव अपने सामन्तगणोंके

साथ विराजमान है; इसी समय इन्द्र नाट्यके द्वारा उसे प्रसन्न करना चाहता है। दिव्य संगीतकी पृष्ठभूमिमें 'नीलाञ्जना' नामक एक अमर नर्तकीका नाट्य शुरू होता है। उसके अलौकिक सौन्दर्यके वर्णनमें पम्पकी समर्थ लेखनीका जीहर देखिए :—

एनिसिद नीळांजनेक

बिनबिर्लिल मसेद मदनन कणे बर्दुकि

तेनिसुतोळपोक्कळ भों

कने निखिळांतरंगमं रंगमुमं ॥

[अमर नर्तकी नीलाञ्जनाने मन्मथके इक्षुकोदण्डसे निसृत कुसुम बाणकी भाँति दर्शकोंके हृदयोंको क्षत-विक्षत करते हुए रंगभूमिमें प्रवेश किया। रंगभूमिमें क्या प्रवेश किया, अखिल प्रेक्षकोंके अन्तरंगमें ही प्रवेश कर लिया।]

नीलाञ्जनाने अभिनयकी नूतन गतिमें नाट्यागम ही बदल गया। वह जिधर आँखें घुमाती थी, उधर चाँदनी-सी छिटक जाती थी। सभामें उपस्थित क्या मानव, क्या देवता—सब उसकी शारीरिक सुन्दरता व अग-सञ्चालनको निर्निमेष नयनोसे प्रस्तर-प्रतिमाकी भाँति निहारते रह गए। उसके अभिराम एवं चञ्चल पद-सञ्चारोंमें भ्रू-विलासमें मदन साम्राज्यका विलास ही आ विलुलित हो रहा था।

ऐसी मोहिनीके मनमोहक नाट्यसे पुरु परमेश्वर भी मुग्ध हो गए। नीलाञ्जनाका नाट्य मानो उसके जीवन का सार, सर्वस्व था। परन्तु इसके बीचमें ही उसकी आयु समाप्त हो गई। वह विद्युत्तलताकी भाँति रंगस्थलसे अदृश्य हो गई। इन्द्रने, जो इसे देख रहा था, रगमें भग्न होनेके उद्देश्यसे ऐसी ही एक दूसरी नर्तकीका अनुसन्धान कर नाट्यको चालू रखा। वहाँ उपस्थित देव-मानवोंमें किसीकी भी यह रहस्य ज्ञात नहीं हुआ; परन्तु पुरु परमेश्वरको ज्ञात हो गया। देहकी अनित्यातापर वे चकित रह गए। इन क्षणिक विभव विलासोंसे उनका मन उचट गया :—

कोटितेरिंदद मेसेवी

नाटकमं तोरि तोरि माण्वळिल्लळ; बगेथोळ् ।

नाटुविन अमरि संस्सुति

नाटकमुमनेनगे तोरिवळीगळ् ।

[कोटि-कोटि भंगिमाओंके चित्र-विचित्र नाट्यको इस नर्तकीने दर्शाया। किन्तु उसके साथ ही इसने इस संस्मृति नाटकको भी दिखाकर मेरे हृदयमें तीव्र विराग जागृत किया।]

तनुरूप विभव योवन

धन सौभाग्यायुरादिगळगे एने; कुडुमि

चिन पोळेपु मुगिल नेळल् हं

द्रन बिल् बोम्बळिके युर्बुर्पावद भोगं ।

[यह सुकुमार शरीर, अखण्ड वैभव, यह मादक यौवन, धन, सौभाग्य-आयु आदि सौदामिनीकी भाँति चञ्चल है, अभ्र-छायाकी भाँति नश्वर है, इन्द्र-धनुषकी भाँति क्षणभंगुर है। यौवनके उद्दाम आवेग एव भोग बुद्बुदकी भाँति क्षणिक है।]

इस प्रकार पुरु परमेश्वरने सर्वत्र दुःखको ही छलकते हुए देखा। अनन्त सुख, अनन्त तृप्ति केवल मुक्तिमें ही सम्भव है। 'हाय ! मैं कितने जन्म-जन्मान्तरोंमें भटकता रहा ! मैं अब नहीं भटक सकता।' इस प्रकार दृढ़ निश्चय कर उन्होंने परिनिष्क्रमण किया।

इसी प्रकार पुरुतनय बाहुबलिका वैराग्य प्रसंग भी आदि पुराणका अतीव मार्मिक स्थल है।

इस प्रकार वैराग्यके सामने लौकिक वैभवको नीचा दिखानेपर भी कविने इस लोककी विभूतियोंकी, सौन्दर्यकी निन्दा नहीं की है। पम्प सौन्दर्यका अनन्य पुजारी है, अतः उसने कही भी उस सौन्दर्यकी अवहेलना नहीं की है। उसकी सौन्दर्य मीमांसा है :-

धर्म प्रधानं, अर्थ

धर्माध्रिय फलं, अदर्क रसमदु कामं ॥

[इस संसारमें धर्म ही प्रधान है, अर्थ उस धर्मवृत्तका फल है, और उस फलका रस है काम।]

'विक्रमार्जुन विजय' अथवा 'समस्त भारत', जो 'पम्प भारत' के नामसे अधिक प्रसिद्ध है, पम्पकी लौकिक कृति है। पम्प भारत अपनी सक्षिप्तता एवं ध्वनिपूर्णताके लिये भारत भरमें अद्वितीय है। कविने 'महाभारत' को पञ्चम वेदके रूपमें नहीं देखा है, बल्कि मानवीय रागद्वेषोंके उज्ज्वल इतिहासके रूपमें देखा है, 'महाभारत' की अनेक विसंगतियोंको निकालकर उसमें कुछ नवीन अद्भवनाएँ की है। उसने महाभारतके कथानकके साथ-साथ अपने समकालीन इतिहासको भी निरूपित करनेका प्रयत्न किया है। अपने आश्रयदाता अरिकेसरीकी प्रशंसा करना कविका उद्देश्य था। उसने अर्जुनके साथ अरिकेसरीका समीकरण किया है। अरिकेसरीकी उपाधियोंको अर्जुनके साथ संलग्न किया है। पम्प भारतका नायक अर्जुन है। 'विक्रमार्जुन विजय' अरिकेसरीकी विजय है। इस प्रकार भारतका ऐतिहासिक काव्य 'महाभारत' पम्पके हाथोंमें पड़कर तत्कालीन कर्नाटकका इतिहास काव्य बना है। अर्जुनको अपने काव्यका नायक बनानेके कारण मूल कथामें कुछ परिवर्तन भी करने पड़े हैं। व्यासके भारतकी भाँति पम्प भारतकी द्रौपदी पञ्चवल्लभा नहीं है, केवल अर्जुनकी पत्नी है। द्रौपदी वस्त्रापहरण जैसे जघन्य कृत्यका सन्निवेश भी इसमें नहीं है। काव्यान्तर्में अर्जुनका राजतिलक होता है न कि युधिष्ठिरका। व्यासकी भाँति पम्पने कृष्णको प्रधानता नहीं दी है। कहीं भी यह ज्ञात नहीं होता है

कि 'विक्रमार्जुन विजय' का रचयिता जैन है। पम्पका दुर्योधन कविके काव्य-कारण्य जलमे पड़कर अधिक मानवीय बन गया है।

पम्प भारतके उज्ज्वल चरित्रोंका कानन है। आदिपुराणमे रस निरूपणपर कविका ध्यान अधिक है तो इसमे चरित्र-चित्रणपर। अर्जुनको नायक बनानेपर भी कवि इतर चरित्रोंको नहीं भूला है। पम्पके कल्पना-काननका कमनीय कुसुम है कर्ण। कर्णके स्वर्ण चारित्र्यसे समग्र कन्नड़ काव्यलोक आलोकित है। कर्ण-जैसा उज्ज्वल एवं मार्मिक चरित्र विश्व-साहित्यमे दुर्लभ है। कर्णके अपूर्व त्याग, शौर्य, उसकी एकान्त निष्ठा, उसका दुर्भाग्य आदिको देखकर कवि क्षण भरके लिए अपने नायकको भी भूल जाता है।

अपने काव्यकी शैलीके बारेमें पम्पने स्वयं कहा है—'हितमित मृदुवचन, प्रसन्न गम्भीर, वचन रचन चतुर' कोमलं, सुभग, सूक्ति गर्भं, मृदुसन्दर्भं, विचारक्षम, श्रव्य, वास्तवमे ये उक्तियाँ निरी प्रशंसा की बाते नहीं हैं, सत्य हैं।

पम्प निर्विवाद रूपसे महाकवि है, आज भी वे कन्नड़के कविकुलगुरु हैं। परवर्ती कवियोंमे प्रत्येक कविने अपनी भक्ति-कुसुमाञ्जलि पम्पके चरणोंमे अर्पित की है। यहाँ तक कि कन्नड़के प्रसिद्ध रामायणी नागचन्द्रने अपनेको अभिनव पम्पके नामसे भूषित किया है। 'जिन समयदीपक' कहकर सब कवियोंने उनकी प्रशंसा मुक्तकण्ठसे की है, जिन समयदीपक ही नहीं, वह कविकुलदीपक भी है। कन्नड़के सुप्रसिद्ध आलोचक प्रो. तो. न. श्री कण्ठैयाजीके अनुसार पम्प न केवल आदि कवि है, अग्रकवि भी है; वे कन्नड़के कवि कुलगुरु कालिदास हैं। पूर्व जीवन, पूर्ण सौन्दर्यके पारखी पम्प मानव हृदयकी अक्षय निधियोंके अमर गायक हैं।

'रत्नत्रयी' के द्वितीय कवि है पोन्न (९५० ई.)। इन्होंने तीन ग्रन्थ लिखे हैं—(१) शान्ति पुराण (२) भुवनैक रामाभ्युदय (३) जिनाक्षर माले। किन्तु उनका दूसरा काव्य अनुपलब्ध है। पोन्न राष्ट्रकूट नरेश कृष्णके दरबारी कवि थे। पम्पके लौकिक भारतकी भाँति यह भी सम्भवतः लौकिक रामायण जैसा ही ग्रन्थ रहा होगा। शान्ति पुराण सोलहवें तीर्थंकर शान्तिनाथकी कथापर लिखा गया चम्पू काव्य है। काव्य धर्म एवं जैनधर्मके समन्वयमे पम्पकी जैसी सफलता इन्हें नहीं मिल पाई है।

'रत्नत्रयी' के तीसरे कवि है रन्न (९९० ई.)। चालुक्य नरेश तैलपने इन्हें 'कवि चक्रवर्ती' की उपाधि दी थी। रन्नके उपलब्ध ग्रन्थ दो हैं :—

(१) 'अजितनाथ पुराण' (२) 'साहस भीम विजय' अथवा 'गदा युद्ध'।

'अजितनाथ पुराण' मे द्वितीय तीर्थंकर अजितनाथकी कथा वर्णित है। अजितनाथ एवं सगरचक्रवर्तीके वैराग्यवर्णनमे कविकी प्रतिभा पूर्ण रूपसे प्रस्फुटित

हुई है। किसी भी भावुकके हृदयको भी बदलनेवाली अद्भुत शक्ति उसमें है। इस प्रकार कविने एक सुन्दर काव्य-मन्दिरकी स्थापना कर उसपर वैराग्यकी वैजयन्ती फहराई है।

‘गदायुद्ध’ रत्नकी लौकिक कृति है। भासके ‘ऊह भंग’, भट्ट नारायणके ‘वेणी संहार’ से कविने प्रेरणा पाई है। ‘गदायुद्ध’ की विशेषता एक तो उसकी नाटकीयतामे है और दूसरी दुर्योधनके चरित्रमे है। पाश्चात्य दुखान्त नाटक (Tragedy) के नायककी भाँति अपने ही दुखान्त दोषके कारण मरनेवाला, किन्तु महान् गुणोंसे मण्डित महानुभाव है। व्यासके दुर्योधनकी भाँति यह मदोन्मत्त नहीं है, हठ उसका दुखान्त दोष (Tragiclaw) है। उस हठके कारण वह कुकार्य कर बैठता है, किन्तु उसके भीतर धडकता है एक मानवीय हृदय। रणभूमिमे जाते समय अभिमन्युके शवको देख वह शोकाकुल हो जाता है। उसके साहसकी प्रशंसा करते हुए उससे प्रार्थना करता है—‘हे अभिमन्यु, तुझ जैसा अप्रतिम एवं साहसपूर्ण मरण मुझे भी प्राप्त हो।’ कर्ण-दुःशासन आदिकी मृत्युपर उसने जो आँसू बहाए हैं, उससे सभी कन्नड काव्य भूमि गीली हो उठी है।

रत्न पम्पसे प्रभावित है। गदायुद्धका नायक भीम है। इसने भी अपने आश्रयदाता सत्याश्रयके साथ भीमका समीकरण किया है। गदायुद्धमे सिंहावलोकन क्रमसे महाभारतकी कथा कही गई है। रस-निरूपण, चरित्र-चित्रण, प्रसंग-निरूपण आदिमे रत्न अनुपम है। रत्नकी-सी ओजमयी शैली कन्नड साहित्यमे दूसरेको नहीं मिली। रत्न सच्चे अर्थमे पौरुषके कवि है।

इसी समय चावुण्डरायने (९७५ ई.) ‘त्रिषष्टिशलाका पुरुष पुराण’ अथवा ‘चावुण्डराय पुराण’ नामक गद्य-ग्रन्थ लिखा। चावुण्डराय अपने युगके एक महान् व्यक्ति थे। वे गगराजवंशके अनेक राजाओंका मन्त्री थे। युद्धवीरके साथ-साथ वे धर्मवीर भी थे। साहित्य एवं स्थापत्यके द्वारा उन्होंने जैनधर्मकी स्तुत्य सेवा की। विश्वभरमे अद्वितीय एवं अत्युन्नत सोममटेश्वरकी मूर्ति उनकी अक्षय कीर्तिका स्मारक है।

नागवर्माने (९९० ई.) बाणके कादम्बरीकी रचना चम्पूशैलीमें की है। काव्यका बन्ध सरस एवं सुललित है। कादम्बरीका जटिल कथा-सविधान तथा बाणका प्रौढ़ गद्य कन्नड़में एक हृद्य एवं सरस चम्पूकाव्यके रूपमे अवतरित हुआ है। अपनी वैदर्भी शैली, मार्मिक स्थलोंकी पहचान तथा रसस्थानोंके स्पर्शके कारण नागवर्मा अविस्मरणीय है। ‘छदोम्बुधि’ उनका पिगल-ग्रन्थ है, जिसमे कन्नड़ एवं कन्नड़ मे प्रचलित संस्कृत-छंदोंका सागोपांग विवेचन है।

दुर्गसिंह (१०३० ई.) इस युगका एक उल्लेखनीय चम्पूकार है। उसका ‘पञ्चतन्त्र’ वसुभाग भट्टके पञ्चतन्त्रके आधारपर लिखा हुआ प्रौढ़ चम्पूकाव्य है। कन्नड़ गद्यशैलीके उत्कृष्ट नमूनोंके दर्शन इसके कई प्रसंगोमे होते हैं। संस्कृतमें

विष्णुशर्माके 'पञ्चतन्त्र' का नाम तो विख्यात है; किन्तु वसुभाग भट्टके एक दूसरे 'पञ्चतन्त्र' का पता दुर्गसिंह से ही लगा है। इस दृष्टिसे इसका ऐतिहासिक महत्व है।

शातिनाथ (१०६१ ई.) का 'सुकुमारचरिते' एक सुन्दर चम्पूकाव्य है। इस युगके शास्त्र ग्रन्थकारोंमें चन्द्रराज (१०४० ई.) तथा श्रीधराचार्य (१०५० ई.) मुख्य हैं, जिनके 'मदन तिलक' एवं 'जातक तिलक' अपने क्षेत्रके अनूठे ग्रन्थ हैं।

बारहवीं शताब्दीके प्रारम्भ कालीन कवियोंमें नागचन्द्र अथवा अभिनव पम्प (११०० ई.) का मूर्द्धन्यस्थान है। नागचन्द्र होयसल नरेश वीरबल्लाल प्रथमके दरबारमें थे। 'मल्लिनाथ पुराण' तथा 'रामचन्द्र चरित पुराण' अथवा 'पम्प रामायण' इनके दो चम्पूग्रन्थ हैं। इनके काव्योमें भक्ति एवं वैराग्यकी प्रधानता है।

'मल्लिनाथ पुराण' में उन्नीसवें तीर्थकर मल्लिनाथकी कथा वर्णित है, किन्तु नागचन्द्रकी अक्षयकीर्तिकी कौमुदी है उनकी 'रामायण'। यह जैन रामायण विमलसूरिके प्राकृत ग्रन्थ 'पउम चरिउ' के आधारपर रचित है। वाल्मीकि रामायण और इसमें बहुत ही अन्तर है। दशरथके पुत्रकामेष्टि यज्ञ आदि वैदिक कर्मकांडोंका उल्लेख तक इसमें नहीं है। विश्वामित्र वसिष्ठ, वाल्मीकि आदि ऋषियोंकी चर्चा भी नहीं है। धनुर्भंगका प्रसंग भी नहीं है। हनुमान, बालि आदि कपि नहीं कपि-ध्वज हैं। रावण दशकण्ठ नहीं है। दशकण्ठ उसकी उपाधि-मात्र है। वह राक्षस भी नहीं है। राक्षस नामक व्यक्तिका वशधर है। रावणको मारनेवाले राम नहीं, लक्ष्मण है। बालि वैराग्यसे संन्यासी बनता है। जनस्थानमें सीताके द्वारा लक्ष्मणकी निन्दाका प्रसंग भी इसमें नहीं है।

पम्प रामायणकी अक्षय कीर्तिका स्तम्भ है उसमें वर्णित रावणका चरित्र। वाल्मीकिका रावण दुष्ट है, नशंस है, मदोन्मत्त है, कामुक एवं लोक-पीड़क राक्षस है। नागचक्रका रावण लोक-पीड़क नहीं, लोकसंग्रही एवं धर्मपरायण है। रावणके शील-शैलके औन्नत्यको स्पष्ट करनेवाला एक मार्मिक प्रसंग इसमें आया है। एक बार रावण नलकूबरकी राजधानी दुर्लघ्यपुरपर चढ़ाई करता है। नल कूबरकी पत्नी उपरम्भा जो रावणपर बहुत पहले से ही मोहित थी, प्रणय याचनाके लिए अपनी दूतीको भेजती है। दूती यह सन्देश लाती है कि यदि रावण उसके प्रणयको स्वीकार कर लेगा तो उपरम्भा उसे दुर्ग जीतनेका रहस्य बतला देगी। रावण उससे वह रहस्य जानकर नलकूबरको परास्त करता है। विजयोत्सवके समय जब उपरम्भा आकर प्रणय निवेदन करती है, तो रावण उसे अपना गृह मानकर उससे क्षमा याचना करता है और उसे उसके पतिके साथ कर स्वयं लौट जाता है।

रावणने अपने गुरुके समक्ष परांगना-विरति-व्रत की दीक्षा ली थी। ऐसे महान् व्यक्तिमें विधि-विलाससे एक दोष, स्त्री-मोह आ मिलता है। कर्मविपाकसे यह दोष उसका दुःखान्त दोष (Tragic law) बनता है। इसी दोषसे उसका सर्व-नाश होता है। बस, इस दोषको छोड़कर उसमें कोई भी दोष नहीं है। पराजित राजाओंको प्रस्थापित करनेवाला, सुर, नर, यक्ष आदि स्त्रियोंके अपने ऊपर मोहित होनेपर भी अविचलित रहनेवाले इस जितेन्द्रिय महात्माका पतन वास्तवमें बड़ा ही करुण है। विधिके वज्र हस्तमें पड़कर तड़पनेवाले रावणके चरित्रको महाकविने अपार सहानुभूतिसे चित्रित किया है। इस दृष्टिसे नागचन्द्रका रावण माइकेल मधु-सूदन दत्तके रावणसे भी सुन्दर चरित्र है। नागचन्द्रका रावण महानुभाव है। ऐसा महान् व्यक्ति भी कर्मके जालसे, मानवीय वासनासे मुक्त नहीं है, यही ससारके रुद्र नाटकका मर्म है।

कर्मके कारण ही जीवकी दुर्गति होती है। सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दर्शन एवं सम्यक् चारित्र्यसे इस कर्मशृंखलासे मुक्ति सम्भव है। यही इस काव्यका दर्शन है। इस प्रतिपादन, मार्मिक स्थलोंकी पहचान, चरित्र-चित्रण आदिमें नागचन्द्र अद्वितीय है। नागचन्द्र सुकुमार भावनाओंका अद्भुत पारखी है। भाव-लालित्य, शब्द-लालित्य उसकी विशेषता है। तुलसीकी भाँति नागचन्द्रने विरह विदग्ध रामका हृदय विद्रावक वर्णन प्रस्तुत किया है। विरह व्याकुल रामके हृदयकी वेदनाकी एक बानगी लीजिये :—

कळहंसालसयानेयं मृगमदामोदास्य निश्वासेयं ।

तळिरे तावरेये मदाळिकुळमे कर्नेदिले मत्तको ॥

फिळमे कंडिरे पल्लवाधरेयनंभोजास्येयं भृंग कुं ।

तळ्ये कँरवनेत्रेयं पिकरव प्रख्यातेयं सीतेयं ॥

[विरह विदग्ध राम वनके तरु-लता-गुल्मोंसे, पत्र-प्रसूनोसे, पक्षियोंसे अपनी मृगनयनी सीताका पता माँग रहे हैं—हे मर्मरित पल्लव, हे कोमल कमलिनी, हे मत्त भ्रमर, हे आमोदमयी कुमुदिनी, ऐ मतवाली कोमलांगी, क्या तुमने उस पल्लवा-धराको देखा है, उस अम्भोजवदनीको कही जाते देखा है, उस कँरवनेत्री एवं पिकरव प्रख्याता सीताको देखा है, बताओ न, देखा है क्या ?]

नागचन्द्रकी दूसरी महान् देन है शान्तरसका प्रतिपादन। यदि भवभूतिके अनुसार 'एकोरसः करुण एव' हो, तो नागचन्द्र 'एकोरसः शान्त एव' (निनगे रसमोदे शान्तमे जिनेन्द्रा) मानते हैं। अभिनवगुप्ताचार्यका चरम निर्णय भी यही है।

रुद्रभट्ट (१२०० ई.) कन्नड़के प्रथम वैष्णव कवि है। इनका जगन्नाथ विजय श्रीकृष्णकी लीलाओंका वर्णन करनेवाला प्रौढ़ चम्पू-काव्य है। सूरकी भाँति इन्होंने भी श्रीकृष्णकी बाललीलाओंका मनोहारी वर्णन किया है। नेमिचन्द्र (११७० ई.),

का 'लीलावती' सुबन्धु के 'वात्सवदत्ता' के कथानकपर लिखा शृंगार प्रधान प्रौढ़ चम्पू-ग्रन्थ है।

इसी समय कन्नड़ साहित्यमें सम्प्रदाय विरोधी प्रवृत्तियाँ, क्रान्तिकारी प्रवृत्तियाँ गूँज उठी हैं। संस्कृतकी सुवर्ण शृंखलासे कन्नड़ काव्यकी मुक्त करनेके लिए आण्डट्ठ (१२२५ ई.) नयसेन (११०० ई.), ब्रह्मशिव (११५० ई.) आदि कवियोंने विद्रोह किया। यदि दसवी तथा ग्यारहवीं शताब्दियोंके काव्योंसे पर-धर्म-सहिष्णुता गोचर होती है तो बारहवीं शतीमें अन्यमत-विडम्बन दिखाई देने लगता है। कन्नड़के विडम्बनकारोंमें नयसेन चिरंजीवी है। उसका 'चर्मामृत' अन्य मतका विडम्बनकरके जैनधर्मका प्रचार करनेवाला चम्पू ग्रन्थ है।

कर्णचार्यका नेमिनाथ पुराण अिस युगका एक और उल्लेखनीय चम्पू ग्रन्थ है। इस युगका सर्वश्रेष्ठ रीतिकार है नागवर्मा द्वितीय (११५० ई.) यह चालुक्य जगदेक मल्लका दरबारी कवि था। 'काव्यावलोकन' 'भाषा भूषण' 'वस्तुकोष' इसके उपलब्ध ग्रन्थ हैं। काव्यावलोकनके 'शब्द स्मृति' नामक भागमें प्राचीन कन्नड़का व्याकरण है। 'काव्यमलव्यावृत्ति' नामक परिच्छेदमें काव्यके दोष तथा उनके परिहासका विवेचन है। 'गुणविवेक' में काव्यगुणोंकी चर्चा है। रीति, रस निरूपण परिच्छेद में रस तत्त्वका विवेचन है। 'रीतिरात्मा काव्यस्य' कहनेके बदले इसने रीतिको काव्यका शरीर बताया है। इस दृष्टिसे इसका सिद्धान्त भारतीय काव्यमीमासाके लिए एक नूतन देन है। इसके पहले संस्कृतमें भी किसीने यह बात नहीं कही थी। 'कविसमय' नामक पंचम प्रकरणमें कविसमयका सांगोपाग वर्णन है। 'काव्यावलोकन' कन्नड़का सर्वश्रेष्ठ लक्षण-ग्रन्थ है। इसमें अनेक अज्ञात कवियोंकी कविताओंके उदाहरण होनेके कारण इसका ऐतिहासिक महत्व भी कम नहीं है।

'भाषाभूषण' कन्नड़ भाषाका संस्कृतमें परिचय करानेवाला व्याकरण ग्रन्थ है। 'वस्तुकोष' कन्नड़में प्रचलित संस्कृत शब्दोंका एक निघण्टु है।

नागवर्माको हम कन्नड़के रीतिकारोंका मार्गदर्शी एवं आचार्य मान सकते हैं। नागवर्मा केवल एक शुष्क शास्त्रकार ही नहीं है। अपने लक्षण ग्रंथोंमें कविताओंके जो उद्धरण उन्होंने दिए हैं, उनसे उनकी सहृदयताका पता लगता है। कन्नड़ साहित्यकी सर्वांगीण प्रगतिमें नागवर्माका महत्वपूर्ण योगदान है।

पम्पयुगमें मानव हृदयकी रागात्मिका एवं परुष सभी वृत्तियोंकी विस्तृत अभिव्यक्ति हुई है। वास्तवमें इसी युगमें कन्नड़ साहित्य अपने सर्वोच्च विकास पर पहुँचा है। अतः पम्प युगको कन्नड़ साहित्यका स्वर्णयुग कहनेमें कोई अतिशयोक्ति नहीं है। शान्तरस प्रधान काव्योंकी जो उज्ज्वल परम्परा कन्नड़में है वह अन्य किसी भी भाषामें नहीं है। इस दृष्टिसे शांत रस भारतीय साहित्यको कन्नड़की महत्वपूर्ण देन है। इस युगकी दूसरी देन है चम्पू शैली। वास्तवमें चम्पूशैलीका उदय दक्षिणमें वह भी

कर्नाटकमें हुआ। संस्कृत व प्राकृतमें चम्पूकाव्योंकी रचना करनेवाले सभी या तो कर्नाटकके हैं या किसी न किसी प्रकार कर्नाटकसे उनका सम्बन्ध है। प्रो. बेन्द्रे, प्रो. मुगुलि आदि 'चम्पू' शब्दको (चन्+यू = सुन्दरफूल, चम्पू, सोम्पु-मञ्जरी) भी कन्नड़का शब्द मानते हैं।

वारहवीं शताब्दी कर्नाटकके धार्मिक इतिहासका स्वर्णयुग है। पम्प युगके पश्चात् कन्नड साहित्यमें एक अद्भुत क्रान्ति होती है। बसवेश्वरने वीरशैव धर्मके पुनरुज्जीवनके द्वारा कर्नाटकके धार्मिक, सामाजिक एवं साहित्यिक क्षेत्रोंमें युगान्तर उपस्थित किया। जब देववाणी जनवाणी नहीं बन सकी, तो जनवाणीको ही देववाणीके सिंहासनपर प्रतिष्ठित करनेका स्तुत्य कार्य बसवेश्वर तथा उनके अनुयायियोंने किया। इस क्रान्तिका माध्यम इन्होंने सरल व सुन्दर 'वचनो' को बनाया।

१२ वीं से १५ वीं शताब्दी तकके इस कालखण्डमें अनेक राज्य साम्राज्य उदय-अस्त हुए। फलतः राजकीय क्षेत्रमें कोलाहल मचा। जनजीवन क्षुब्ध हो उठा। इसका प्रभाव साहित्यपर भी पड़ा। चालुक्य वंश अस्तंगत हो रहा था। उसके भग्नावशेषोंपर कलचुर्य वंशका बिज्जळ उदित हो रहा था। होयसल वंशके राजा अपने राज्यविस्तारमें आगे बढ़ रहे थे। १३ वीं शताब्दीके अन्तमें कर्नाटक पर मुसलमानोंका आक्रमण हुआ। अल्लाउद्दीन तथा मलिकके भयंकर आक्रमणोंसे यादव तथा होयसल दोनों राजवंश मिट्टी में मिल गए। हिन्दू संस्कृति ही अस्तप्राय हो गई थी। इस निराशाके समयमें विद्यारण्यजीकी प्रेरणा तथा होयसल राजाओंके उत्साहसे विजयनगर साम्राज्यकी स्थापना हुई। विजयनगर साम्राज्य समग्र दक्षिणावर्तका एक शक्ति केन्द्र बना धर्म, संस्कृति, कला एवं साहित्यको प्रभूत आश्रय मिला।

बसवयुगकी विशेषताएँ यों दी जा सकती हैं :—

(१) साहित्यमें 'मार्गशैली' के स्थानपर 'देसी' शैलीका प्राधान्य।

(२) 'वचन' नामक एक विशिष्ट साहित्य-प्रकारका आविर्भाव हुआ, जिसे हम एक प्रकारसे गद्यगीत कह सकते हैं। कबीर आदि सन्तोंकी बानियोंकी भाँति ये वचन आन्तरिक अनुभूतियोंकी, आध्यात्मिक चिन्तनकी सुन्दर व्यञ्जना करनेवाले स्फुलिंग हैं।

(३) 'रगळे', 'षट्पदी', 'त्रिपदि' आदि कन्नड़के देशी छन्दोंकी प्रधानता।

(४) इस युगमें वीरशैव धर्मावलम्बियोंने अधिक संख्यामें रचनाएँ की हैं। शिवकी लीलाओंका गान इस युगके प्रबन्ध काव्योंका प्रधान उद्देश्य रहा है।

(५) भाषामें प्राचीन कन्नड़ मध्यकालीन कन्नड़की अवस्थापर पहुँचती है।

(६) रहस्यवादी एवं सन्त कवियोंकी परम्परा।

वचनोंकी भाषा नितान्त सरल है। इसमें कुछ ही पक्तियाँ होती हैं और यह व्यग्यमय, प्रायः तालबद्ध एवं अनुप्रास मण्डित होता है। छः पक्तियोंसे लेकर अधिकसे अधिक पन्द्रह पक्तियाँ उसमें रहती हैं। ये 'वचन' सच्चे अर्थमें मानवके परिपूर्ण क्षणोंकी वाणी हैं। भक्तिके भावावेशमें सन्त कवियोंके हृदयसे निःसृत ये वाणियाँ चिदग्नि कुण्डके स्फुल्लिगकण हैं। इन वचनोंके प्रतिपाद्य विषय है शक्ति-विशिष्टाद्वैत तत्त्व, षट्स्थल जिनकी तुलना हम सूफियोंके 'छः मुकामातों' से कर सकते हैं, अङ्ग एवं लिङ्गका सम्बन्ध, पञ्चाचार, अष्टावरण आदिसे है।

इन वचनकारोंकी संख्या हजारों तक जाती है, जिनमें कई स्त्रियाँ भी हैं। बसवेश्वर, अल्लमप्रभु, अक्कमहादेवी, चैन्नबसव एवं सिद्धरायको इस शैव साहित्यका पञ्चमुख कह सकते हैं।

बसवेश्वर (११५० ई.) कर्नाटकके महान् समाज-सुधारक एवं युगप्रवर्तक साहित्यकार थे। उनके वचनोंमें अनन्तका पानेकी आकुलता है, जो बिलकुल अनूठी है। भक्तके दैन्य, आत्मविमर्श, आत्मनिवेदन आदिकी मार्मिक व्यञ्जना इनमें है। 'कायक' (कर्म) को अपूर्व महत्व देकर बसवेश्वरने इस ससारको कर्मभूमि बताया। सदाचारपर तो उसने सर्वाधिक महत्व दिया है। आचार एवं विचारोंकी अभिन्नतापर जोर देते हुए बसवने बाह्याचार एवं मिथ्याचारकी खिल्ली उड़ाई है।

ईश्वरके प्रति एकान्त निष्ठापर उन्होंने जोर दिया है। उनके मतानुसार भक्ति पतिव्रता स्त्रीके प्रेमकी भाँति है। बहुदेवोपासना व्यभिचार है।

यदि बसवेश्वरके वचनोंमें भक्तिकी तीव्रता है तो प्रभुदेव (११५० ई.) (अल्लम प्रभु)की वाणियोंमें साधनाकी अंकी अभिव्यक्ति और पहुँचे हुए ज्ञानकी वाणीके दर्शन होते हैं। प्रभुदेव बसवेश्वरके गुरु थे। बसवेश्वरकी भाँति हम उनमें साधनाके तर तम सोपानोंको नहीं देख सकते। ऐसा लगता है कि वे जन्मके साथ ही सिद्ध बन गए थे। इनके वचनोंमें कबीरके वचनोंकी भाँति एक प्रकारका अलहड़पन दर्शित होता है। एक प्रकारकी निर्भीकता एवं निरकुशता दिखाई देती है। अल्लमप्रभु किसी सम्प्रदाय विशेषको महत्ता देनेवाले नहीं थे। घर जोड़नेकी मायामें, पन्थ चलानेके भ्रममें वे कभी नहीं पड़े। विचारके निकष पर कसकर जो कुछ सत्य है उसे स्वीकार करनेवाले सन्त थे। उनके वचनोंमें कई ऐसे हैं जो कबीरकी उलट बाँसियोंकी भाँति जटिलता एवं विरोधाभाससे युक्त हैं। प्रभुदेव कर्नाटकके सार्वभौम सन्त हैं। कर्नाटकके सभी साधक एवं सन्तोपर उनका अक्षुण्ण प्रभाव है। उनको वाग्विभूति विश्व भारतीका भी शृंगार कर सकती है, उनका व्यक्तित्व विश्वमानवका व्यक्तित्व है।

अक्कमहादेवी (११५० ई.) कन्नड़की प्रथम कवयित्री तथा शिव-उपासिका हैं। महादेवीकी जीवनी आत्माकी प्रेमसाधनाका ज्वलन्त इतिहास है। मीरा और

अक्कमहादेवीमें अद्भुत साम्य दिखाई देता है। मीराकी भाँति अक्कमहादेवी भी राजरानी थीं। यदि मीराने अपने प्रभु व्रजराज कृष्णचन्द्रके प्रेममें पागल हो घरबार छोड़ा, तो अक्कमहादेवी चैन्नमल्लिकार्जुनके प्रेमोन्मादमें अपने पति-पिता, विभव विलास सब कुछ त्यागकर अपने प्रियतमके पन्थको अपनी पलकोसे बुहारते बन-बन भटकती रही। मीराकी साधना मधुर भावमे परिसमाप्त हो जाती है; किन्तु महादेवीकी साधना अद्वैत सिद्धिमे परिणत होती है।

अपने प्रियतमके बारेमे अक्कमहादेवी वनके खगमृगोंसे जो प्रश्न करती हैं उसमे असीमको पानेकी ससीमकी व्याकुलता साकार हो उठी है। प्रिय विरहकातरा बन, जड़-चेतनका ज्ञानभूलकर सृष्टिके कण-कणमे प्रियान्वेषण करनेवाली प्रेमियोंके हृदयकी धड़कने महादेवीकी हृत्तन्त्रीकी झंकारमे अपनी समानधर्मा सिहरनोंका अनुभव कर भावशबल अवशताके अतिरेकसे गमक उठती है। वह प्रश्न करती है :—

“ हे आम्न मञ्जरियो, शरद चन्द्रिके, मन्द्रमधुर गुञ्जार करनेवाले मत्त भ्रमरो, हे मत्त कोकिल, आपने मेरे सर्वस्व मल्लिकार्जुनको कही देखा है ? यदि हाँ, तो मैं आँचल फैलाए प्रार्थना करती हूँ कि उन्हें कृपया मेरे यहाँ भेज दे। ”

“ हे चहकनेवाले शुकगण, तुमने देखा क्या ?

हे कलकृजन करनेवाली कोयलो ! तुमने कहीं देखा है ?

हे मन्द मधुर गुञ्जार करनेवाले अलिकुल, तुमने तो नहीं देखा ?

सरोवरमे विचरनेवाले राजहस, क्या तुमने देखा ?

गिरि कन्दराओमें विहार करनेवाले केकीगण ! कही तुमने तो नहीं देखा !

मेरे प्रभु चैन्नमल्लिकार्जुन कहाँ हैं ? तुम लोग बताओ, तनिक बताओ न ! ”

अक्कमहादेवीके मधुर रसमण्डित आत्म-निवेदन एवं अनन्य तन्मयता, कन्नड़ साहित्यकी अक्षय विभूति है। सिद्धरायके वचनोमे कर्मयोगपर जोर दिया गया है, चैन्नवसवके वचनोंमे ज्ञानकी प्रधानता है। अंबिगर चौडथ्याके वचनोमे समाज विडम्बन है। इन वचनकारोंमे समाजके सभी वर्गके लोग थे, ब्राह्मण थे, अन्त्यज थे, माली थे, तेली थे, भील थे, जाट थे। किन्तु इन सबने मिलकर एक वर्गहीन समाजकी स्थापना की, धर्ममें विचार-तन्त्रका प्रतिष्ठापन किया। इन वचनकारोंके वचन हिन्दीके निर्गुण सन्तोंकी बानियोंकी भाँति अटपटे खण्डन-मण्डनसे भरपूर है। इनमेसे बहुतसे लोग पण्डित नहीं थे, हाँ, वे ढाई अक्षरके मर्मी अवश्य थे। इन सन्तोंने अपने वचन अश्रुओंसे लिखा है, अपने प्रभुका पथ पलकोंसे बुझाया है। उनकी बानियाँ आत्माके क्रन्दन एवं स्पन्दनोंसे आर्द्र बनी है, असीमके प्रति ससीमकी आकुलतासे भरी है। संक्रान्तिकालीन साहित्यके विचार ही उसके अलंकार हैं। अतः वचन साहित्यका

सत्य ही उसका सौन्दर्य है, उसका सौन्दर्य ही उसका सत्य है। कन्नड़का वचन साहित्य कन्नड़के उपनिषद् है।

इन वचनकारोंके पश्चात् इस क्रान्तिके अग्रदूतोंसे प्रेरणा पाकर परवर्ती कवियोंने साहित्यमे एक नूतन मार्ग ही बना लिया है। पम्पयुगमे कन्नड़ संस्कृतकी सुवर्ण शृंखलासे बद्ध थी संस्कृतके मत्तेभविक्रीडित, शार्दूल विक्रीडित, स्रग्धरा आदि वृत्त तथा प्राकृतजन्य 'कन्द' छन्द ही प्रधान रहे। किन्तु वीरशैव कवियोंने कर्नाटक भारतीको इस सुवर्ण शृंखलासे मुक्त किया; किन्तु वीरशैव कवियोंने कर्नाटक भारतीका संस्कृतके कूपजलको तजकर भाषाके बहते नीरसे अभिषेक किया। इन्हीके कारण कन्नड़के अपने देशी छन्द सिंहासनारूढ हुए।

हरिहर और राघवाक (१३०० ई.) इस युगके दो युगप्रवर्तक महाकवि हैं जिन्होंने अपनी क्रान्तिकारी प्रतिभाके द्वारा कन्नड़ साहित्यमे नया मन्वन्तर ही उपस्थित किया। हरिहरने अपने 'रगळे' नामक छन्दके द्वारा तथा राघवांकने अपनी षट्पदियोंके द्वारा काव्यका मार्ग ही बदल दिया। तुलसीकी भाँति इन्होंने 'स्वान्त सुखाय' ही अपने आराध्य देवको सन्तुष्ट करनेके लिए काव्य रचना की। हरके अतिरिक्त किसी नरकी प्रशंसा करना काव्यका व्यभिचार बताया। हरिहरका प्रबन्ध काव्य 'गिरिजा कल्याण' तथा शिवशरणों पर रगळे छन्दमें रचित १०८ काव्यात्मक जीवनीयाँ (Poetic biographies) राघवांकका 'हरिश्चन्द्र काव्य' 'वीरेश चरिते' सिद्ध रामचारित्र्य' आदि षट्पदी छन्दमे लिखी रचनाएँ कन्नड़की गौरव कृतियाँ हैं। 'हरिश्चन्द्र काव्य' तो एक महाकाव्य है जिसमे कविने कीट्सको भाँति हर ही सत्य है, सत्य ही हर हैं, वाले दिव्य तत्वका प्रतिपादन किया है। भीम कविका 'बसव पुराण' इस युगकी एक और उल्लेखनीय कृति है, जिसमे कविने सन्त बसवेश्वरके जीवन तथा साधनाओका निरूपण किया है। इस युगका सर्वश्रेष्ठ जैन कवि है जन्न (१२२५ ई.) इसके 'यशोधरा चरित्रे' एवं 'अनन्तनाथ पुराण' अहिंसा धर्म प्रतिपादक उत्कृष्ट ग्रन्थ हैं। 'यशोधरा चरित्र' कन्नड़के गौरव ग्रन्थोंमेंसे एक है।

इस युगमे शास्त्र ग्रन्थोंकी रचना विपुल मात्रामे हुई। कवि कामका 'रसरत्नाकर' एक सुन्दर रसनिरूपक ग्रन्थ है। मल्लिकार्जुन (१२५० ई.) का 'सूक्ति-सुधार्णव' एक बृहत् एव सुरुचिपूर्ण संकलन ग्रन्थ है। उसका पुत्र केशिराज (१२७५ ई.) का 'शब्द मणिदर्पण' कन्नड़का सर्वश्रेष्ठ एवं प्रामाणिक व्याकरणग्रन्थ है। मंगराज (१३५० ई.) का 'खगेन्द्र मणिदर्पण' एक वैद्यक ग्रन्थ है।

कुमार व्यास-युग अनेक दृष्टियोंसे वैशिष्ट्यपूर्ण है। इस युगका पूर्वभाग विजयनगर साम्राज्यके स्वर्णयुगमे पड़ता है। बसवयुगकी क्रान्तिके परिणामस्वरूप यह युग पूर्ण रूपसे 'देसी' युग बनता है। त्रिपदी, षट्पदी, सांगत्य, कीर्तने (गेयपद) आदि देशी छन्दोंके प्राबल्यके साथ-साथ साहित्य जनजीवनके अधिक निकट

आता है। इस युगमें ब्राह्मणोंने अधिक संख्यामें रचनाएँ की हैं। मध्वाचार्यके अनुयायियोंने दासकूट नामक एक संस्थाके रूपमें दास साहित्यका आन्दोलन चलाया और भागवत धर्मका प्रचार किया।

कुमार व्यास (१४३० ई.) इस युगके प्रतिनिधि कवि है। षट्पदी छन्दमें लिखा इनका 'महाभारत' जन-जनका कण्ठहार है। हिन्दीमें तुलसीरामायणका जो स्थान है, वही कन्नड़में कुमार व्यास भारतका है। 'कुमार व्यास' गदगनिवासी नारणप्पाका काव्यनाम है। नारणप्पाने अपने काव्यको अपने आराध्यदेव 'वीर नारायण' पर लिखा है। 'महाभारत' के केवल दस पर्व कविने लिखे हैं, शेष आठ पर्व विजयनगर-नरेश कृष्णदेवरायके दरबारी कवि तिम्मण कविने पूरे किए।

कुमार व्यासकी कविता गिरिनिर्झरिणीकी भाँति अदम्य वेगसे बहती है। कविकी यह उक्ति—“राजाओके लिए इसमें वीररस है, द्विजोंके लिए परम वेदका सार है, योगीश्वरोंके लिए तत्त्व विचार है, मन्त्रीजनोके लिए बुद्धि विचार है, विरहियोंके लिए शृंगार है, विद्या विद्वानोंके लिए अलंकार है, यह काव्यका गुरु है।” अति-शयोक्ति नहीं, सार्थक है। कुमार व्यासके बारेमें महाकवि कुवेम्पुजीन ठीक ही कहा है—“यदि कुमार व्यास गाने लगे तो कलियुग द्वारपर युग बन जाता है। महा-भारत हमारी आँखोंके सामने नाचने लगता है, हमारी देहपर विद्युत्प्रवाह तरंगित होने लगता है। कुमार व्यास भारत-जैसा जन प्रिय काव्य कन्नड़में दूसरा कोई नहीं है। भू-पालसे लेकर गोपाल तक इसका प्रसार है।

कुमार व्यासके समकालीन कवियोंमें चामरसका नाम अविस्मरणीय है। उनका चरित काव्य 'प्रभुलंगलीले' योगिराज प्रभुदेव की जीवनीपर लिखा हुआ सुन्दर षट्पदी ग्रन्थ है। माया-कोलाहल, प्रभुदेवका जन्म, साधना, सिद्धि आदिका सुन्दर निरूपण इसमें है।

कुमार व्यासके पश्चात् अनेक वैदिक कवियोंने काव्य रचना की है, जिनमें नित्यात्मशुक् योगि (१५३० ई.) का 'भागवत' संस्मरणीय है। षट्पदीमें लिखा यह ग्रन्थ श्री कृष्णकी बाल लीलाओका बड़ा ही अभिराम वर्णन करता है।

तोरवेनरहरि अथवा कुमार वाल्मीकि (१५०० ई.) की 'तोरवेरामायण' कन्नड़की प्रथम वैदिक रामायण है। 'तोरवेरामायण' और 'तुलसी रामायण' में अद्भुत साम्य है।

कुमार व्यासके परवर्ती कवियोंमें लक्ष्मीश (१५५० ई.) का नाम अन्यतम है। इनका 'जैमिनी भारत' कुमार व्यास भारतके पश्चात् अत्यन्त जनप्रिय काव्य है। इन्होंने संस्कृतके पौराणिक कथानकको 'जैमिनी भारत' काव्यके साँचेमें ढाला है। अपनी चिरनूतन शैलीके कारण लक्ष्मीश 'कर्णाटक विभूत वन चैत्र' के नामसे विख्यात

हैं। जैमिनी भारत एक कथा नहीं है, अनेक कथाओंका स्तोत्र है। इनकी कोमल कान्त पदावलीने कन्नड़ काव्यको अपूर्व सरसता प्रदान की है।

कुमार व्यास युगका दूसरा महाकवि रत्नाकर (१५५७ ई.) है। सांगत्य छन्दमें लिखा इनका 'भरतेश वैभव' ८० सन्धियोंका विशालकाय काव्य है। विस्तार एवं गहराई दोनों दृष्टियोंसे यह अपूर्व है। प्रथम तीर्थंकर पुरुष परमेश्वरके ज्येष्ठपुत्र भरतका गणनारहित राज्यसुखोंका अनुभव करनेके पश्चात् जिन योगी बने, कर्मक्षालन कर जिन बननेकी कथा इसकी वर्ण्यवस्तु है। इसमें कविने त्याग एवं भोगका समन्वय कलाके सुवर्ण सूत्रसे किया है। भस्म भोजन दोनोंपर भी योगी है। कीचड़में रहनेपर भी कमल सूर्यकी ओर दृष्टि विण राखी है, उनी प्रत्यक्ष भारत सच्चे अर्थमें 'पद्मपत्रमिवाम्भसा' है। शृंगाररस रसनाकान्ते रसोत्तम पदार्थ सखमुच रसरज बना है। रत्नाकर सुकुमार भावनाओंके अद्वितीय निरूपक है।

१४ वी शताब्दीके पूर्व ही कन्नडमें हरिदासोंके कीर्तन प्रचलित होने लगे हैं। सूर आदि 'अष्टछाप' के कवियोंके गेय पदोंकी भांति इन कीर्तियोंकी प्रियता व समीपता एवं साहित्यके मधुर सगममे है। पदावलियाँ भी अति रासमयिक कृतियोंकी मार्मिक एवं मधुर व्यञ्जना करती हैं। इन हरिदासोंकी एक अगणित परंपरा है, जो आज भी जीवित है। इन हरिदासोंमें श्रीनिवास, व्यासराग, पुरन्दरदास, विजयदास आदि मुख्य हैं। इनमें पुरन्दरदास (१५५० ई.) का सर्वोच्च स्थान है। वास्तवमें पुरन्दरदासजीको ही अपनी श्रेष्ठ कृतियों द्वारा कर्नाटक संगीतको नियमित रूप देनेका श्रेय मिलता है। विद्वानोंने पुरन्दरदासको 'कर्नाटक संगीतका पितामह' कहा है। कहा जाता है कि पुरन्दरदासजीने करीब पाँच लाख पद्योंका संग्रह किया। किन्तु अब केवल ११४० कीर्तन ही उपलब्ध हैं। चिन्तन एवं अनुभूतिका मधुर संगम इनकी कृतियोंकी विशेषता है।

कनकदास (१५५० ई.) इन हरिदासोंमें पहुँचे हुए सन्त थे। उनके गेय गीतोंमें पुरन्दरदाससे भी अधिक आध्यात्मिक परिणति है। इन कीर्तनोंके अतिरिक्त इन्होंने 'नलचरित्रे' 'रामधान्यचरित्रे' 'मोहन तरंगिनि' आदि प्रबन्ध-काव्य भी लिखे हैं। कनकदास जातिके गडरिये थे, किन्तु उनके कीर्तनोंमें सर्वश्रेष्ठ ब्रह्मज्ञानियोंकी अनुभूति है, महाकवियोंकी वाग्विभूति है, एक प्रबुद्ध चेतनकी रसवाणी है।

इन हरिदासोंने अपने कीर्तनोंमें 'हरिसर्वोत्तमत्व' भक्तिकी श्रेष्ठता, सदाचार आदिका प्रचार किया है। भक्तिके विकासमें मध्वाचार्यजीका महत्वपूर्ण योगदान है। इन्होंने 'भक्तिश्च तत्साधनं' कहकर भक्तिको सर्वाधिक महत्व देकर सन्तप्त जनताके हृदयोंको भक्ति भागीरथीसे आर्द्र बनाया। इन हरिदासोंने 'मिथ्या' कहकर संसारकी अवेहलना नहीं की अपितु संसारको कर्मक्षेत्र समझा और जीवनके सौन्दर्यकी ओर जनताको आकृष्ट किया।

भाषाके लिए भी इनकी देन अनुपम है। कन्नड़ भाषा इसी युगमें मध्य-कालीन कन्नड़से आधुनिक कन्नड़की अवस्थाको संक्रमित होती है। माधुर्य भाव और भाषाकी मिठास इन हरिदासोंकी अनुपम देन है।

ईसवी सन् १५७० से १७०० तकका समय कर्नाटकके इतिहासमें अराजकता-का समय है। विजयनगरके पतनके पश्चात् जनजीवनमें जो अस्थिरता एवं अराजकता फैली, उसका प्रतिबिम्ब साहित्यमें भी गोचर होता है। इस युगके कवि परम्पराकी लीकपर हीं चलते रहे, किन्तु इसके अपवाद हैं सर्वज्ञ (१७०० ई.)। सर्वज्ञ वीरशैव सन्तोंके अन्तिम प्रतिनिधि हैं। उनकी बानियाँ लोक-गीतोंके छन्द 'त्रिपदी' में हैं, जिनमें समाजकी रूढ़ियों तथा अन्ध विश्वासोंपर कठोर प्रहार किया गया है। सर्वज्ञ और कवीरमें अपूर्व साम्य है। वही अल्हड़पन, वही लापरवाही, वही घरफूंक मस्ती सर्वज्ञमें भी है। अज्ञातके प्रति मानवीय आत्माका क्रन्दन, हृदयका स्पन्दन सर्वज्ञकी बानियोंमें साकार हो उठा है।

तीर्थ क्या है, सर्वज्ञके मुखसे ही सुनिः—

सत्यरा नुडि तीर्थ नित्यरा नडे तीर्थ

बुत्तमर संगवडु तीर्थ हरिव नी

रेत्तण्डु तीर्थ सर्वज्ञ।

[क्या बहता पानी तीर्थ है? तीर्थ केवल जल नहीं है, सत्यवादियोंकी सन्त जनोंकी बाणी ही तीर्थ है। सन्तजनोका आचार ही तीर्थ है। सत्सग ही तीर्थ है। भला बहनेवाला जल भी कोई तीर्थ है?]

“चित्तशुद्धिके बिना मन्दिरोंकी परिक्रमा करनेवाले मूर्खोंको मैं क्या कहूँ? बैल भी कोल्हूके चारो ओर घूमता है न? भला इसे स्वर्ग मिलता है तो उन बंचारोंने क्या किया?

अन्तरंग शुद्धिके बिना बाह्याडम्बरको ही महत्ता दी जा रही है। भभूत लगानेसे मुक्ति मिल जाती है तो उन गधोंने क्या किया था जो सदा राखपर पड़े पड़े तड़पते रहते हैं? आखिर उनमें और इनमें अन्तर ही क्या है!”

विजयनगरके पतनके पश्चात् साहित्यका केन्द्र मैसूर बना। मैसूर नरेश चिक्कदेवराज ओडेयर (१६७१-१७०४) स्वयं कवि तथा कविजन-पोषक थे। इसी समय श्री वैष्णव मतने जोर पकड़ा। चिक्कदेवराजके दरबारमें तिरुमलार्य, चिक्कुपाध्याय, सिगरार्य आदि श्री वैष्णव कवियोंने अभूत मात्रामे साहित्य रचना की। इसी युगमें चम्पू शैलीका पुनरुज्जीवन भी हुआ।

चिक्कदेवराजने 'गीतगोविन्द' के आदर्शपर 'गीतगोपाल' की रचना की। गीत गोविन्दकी भाँति इसमें भी शृंगार एवं भक्ति प्रधान मधुर गीतोंका संग्रह है। व्रजांगनाओंकी बिरह-वेदना, प्रणय-निवेदन आदिकी मार्मिक व्यञ्जना इसमें हुई है। किन्तु इसका शृंगार तन्त्र शृंगार है, इसमें राधाको स्थान नहीं मिला है। इसमें ही

क्यों, कन्नड़की कृष्ण काव्य परम्पराओंमें राधाका नाम तक नहीं है। इसका कारण स्पष्ट है। दक्षिणके आचार्योंने वैधी भक्तिपर जोर दिया न कि रागानुगा भक्तिपर। अतः परकीय भावकी कविताएँ बहुत ही कम हैं।

चिक्कदेवराज ओडेयरका मन्त्री तिरुमलार्यने 'अप्रतिम वीर चरित' नामक एक रीति ग्रन्थ लिखा है। 'अप्रतिमवीर' चिक्कदेवराजका एक विरुद था। उसकी प्रशंसा में कविने पद्य लिखे हैं। मम्मट, वामन, विद्यानन्द नाथ आदि लाक्षणिकोका प्रभाव इसपर पड़ा है। 'चिक्कदेवराज वंशावलि' में मैसूर राजवंशका इतिहास है। 'चिक्कदेव राजविजय' इसी कविकी एक चम्पू कृति है। तिरुमलार्यकी शैली बहुत ही सरस है, भाषा परिमार्जित है।

चिक्कपाध्याय इसी दरबार का दूसरा कवि है जिसने ३० से अधिक ग्रन्थोंकी रचना की है। इसने 'दिव्यसूरिचरित्रे, रुक्मांगद चरित्रे, विष्णुपुराण' आदि चम्पू ग्रन्थ, शुकसप्तति, कामादक नीति आदि गद्य-ग्रन्थोंकी रचना की है। श्रीवैष्णव धर्म-प्रचार ही इसकी काव्य रचनाका मुख्य उद्देश्य है।

इसी दरबारका एक और कवि सिगरार्य है (१६८० ई.) जिसने कन्नड़का प्रथम नाटक 'मित्रविन्दा गोविन्द' लिखा जो श्रीहर्षकी 'रत्नावली' के आधारपर लिखा गया है।

सिगरार्यकी शिष्या होन्नम्माने, जो चिक्कदेवराजके महलोंमें दासी थी, 'हृदिबदेय धर्म' नामक एक सरस काव्य लिखा है जिसमें पातिव्रत्य धर्मकी महिमा निरूपित है। सागत्य शैलीमें लिखा यह काव्य बहुत ही सरल एवं ललित है। 'अबला' कहकर नारीकी अवहेलना करनेवालोंके लिए उसकी चुनौती कितनी मार्मिक है :—

पेणल्लवे तम्मन्नेल्ल पडेद तायि

पेणल्लवे पोरेदवळु

पेणुपेण्णैदेतके बीळुगळेवव

कण्णुकाणद गाविलरु

[नारी-नारी कहकर नारीकी क्यों अवहेलना करते हो? जिसने तुम्हें जन्म दिया, क्या वह माता नारी नहीं है? जिसने तुम्हें पाला-पोसा, क्या वह बनिता नहीं है? स्त्री-स्त्री कहकर इस पवित्र ममतामयी माताकी अवहेलना करनेवाले आँखोंके होते हुए भी अन्धे हैं, मूर्ख हैं!]

इस युगके वीरशैव कवियोंमें षडक्षरी (१६५० ई.) का नाम उल्लेखनीय है, जिसने 'शबर शंकर विलास' 'वृषभेन्द्र विजय' 'राजशेखरविलास' आदिसं शिवकी लीला तथा शिवशरणोके चरितोंका पाण्डित्यपूर्ण वर्णन दिया किया है।

महल्लगरग अथवा रगावधूत (१६७५) का 'अनुभवामृत' तथा चिदानन्दावधूत (१७५०) का 'ज्ञानसिन्धु' इस युगके श्रेष्ठ अद्वैत ग्रन्थ हैं। जगन्नाथदास (१७७५) 'हरिकथामृतसार' एक प्रौढ़ द्वैतधर्मका प्रमेय ग्रन्थ है।

उन्नीसवीं शताब्दीके आरम्भमें पाश्चात्य सम्पर्कके कारण भारतभरमें सर्वत्र नवीन जागृति की लहरे दौड़ जाती हैं। इस शताब्दीके प्रथम चरणमें ही उपन्यास, नाटक, गद्य आदिके आगमनके चिन्ह मिलते हैं। चिक्कदेवराज ओडेयरके पश्चात् मुम्मडी कृष्णदेवराज ओडेयरने (१७९९-१८६८ ई.) भी साहित्यको काफी प्रोत्साहन दिया। वे स्वयं एक सहृदय लेखक थे। 'श्रीकृष्णराजवाणी विलास भारत' 'शाकुन्तल नाटक की टीका' आदि उनके कई गद्य ग्रन्थ हैं। १८२३ ई. में केम्पु नारायणने 'मुद्रामञ्जूष' नामक एक ऐतिहासिक उपन्यास लिखा, जिसकी कथावस्तु विशाखदत्तके 'मुद्राराक्षस' नाटकसे ली गई है। उपन्यास इतना रोचक है कि आज भी चावसे पढ़ा जाता है। इसकी भाषा मध्यकालीन एवं आधुनिक कन्नड़ की विलक्षण खिचड़ी है।

इसी समय जैनकवि देवचन्द्र द्वारा लिखित 'राजावलीकथे' एक विशिष्ट 'बृहत्कथा' है। जैन साहित्यके लिए इसका ऐतिहासिक महत्व है।

आधुनिक कन्नड़ साहित्यकी क्षिप्र प्रगति एवं विकासमें ईसाई मिशनरियोंका महत्वपूर्ण योग है। १८०९ ई. में विलियम केरी नामक पादरीने इञ्जीलका कन्नड़ अनुवाद प्रस्तुत किया। १८२४ ई. में जान् हेण्डस्ने इंग्लैण्डसे छपाईकी सामग्री लाकर, बल्लारीमें कन्नड़ भाषाका एक प्रेस खोला। मद्रासकी फोर्ट सेण्ट जार्ज संस्थाने अडकी सुब्बरावके (१८४६ ई.) द्वारा कन्नड़ रीडरोंको लिखवाया। १८४८ ई. में ईसाई मिशनरियोंने 'Pilgrims Progress' का अनुवाद 'यात्रिकन सञ्चार' नामसे कराया। १८९४ ई. में किट्टलका विख्यात कन्नड़ अंग्रेजी कोश प्रकाशित हुआ। इसी समय 'सुप्रभात' 'सत्यदीपिके' आदि पत्रिकाओंको निकालकर कन्नड़में वृत्तपत्रोंका श्रीगणेश भी इन्हीं विदेशियोंने किया।

इस शताब्दीके अन्तिम तीन दशकोंमें श्री बी. एल. राइसके नेतृत्वमें कन्नड़के बहुतसे प्राचीन काव्य, रीतिग्रन्थ आदि पाण्डित्यपूर्ण भूमिकाओंके साथ प्रकाशित हुए। इस प्रकार पाश्चात्य आलोचना पद्धतिका प्रयोग भी इन लेखकोंके द्वारा कन्नड़में होने लगा। ये सब भूमिकाएँ अंग्रेजीमें ही थीं, फिर भी ये आगामी आलोचनाके लिए आलोक-स्तम्भ बनीं।

इस युगका सर्वश्रेष्ठ एवं प्रतिनिधि कवि मुद्दण (१८९६-१९०१) है। मुद्दण मध्यकाल एवं आधुनिक युगके सन्धिस्थल पर उपस्थित है। अपने प्राप्त गद्यकाव्य 'रामाश्वमेध' 'अद्भुत रामायण' तथा 'श्रीराम पट्टाभिषेक' द्वारा उन्होंने कन्नड़ साहित्यमें आधुनिक युगका प्रवर्तन किया। 'रामाश्वमेध' मुद्दणकी सर्वश्रेष्ठ

कृति है, जो गद्यमे है। उसकी भाषा प्राचीन कन्नड है, किन्तु शैली आधुनिक। उत्तररामायणकी कथा इसकी वर्ण्य वस्तु है। कथानकमे कोई नवीन उद्भावनाएँ नहीं है। किन्तु मुद्णका नाम सदैवके लिए अमर करनेवाला अश है इस ग्रन्थमें आनेवाला मुद्ण मनोरमा सम्वाद। सरस कवि मुद्ण कथा सुनाने लगता है, कथा है श्रीरामचन्द्रके अश्वमेधकी, सीता परित्यागकी। कविकी पत्नी मनोरमा कथा सुनते सुनते आधुनिक रमणीकी भाँति कही विद्रोह करती है, कही सन्देह प्रकट करती है, कही पुरुषोंके अत्याचार पर क्षोभ प्रकट करती है, कही सीताकी दयनीय दशाका वर्णन सुनकर रो उठती है। मनोरमा नवीन युगकी चिन्ताकी प्रतिनिधि बनकर रामायण श्रवण करती है। उसके सदेहमे, प्रश्नमे एक आधुनिक विचारकोंका मस्तिष्क बोल रहा है। उस विचार प्रवाहके बीच-बीचमे कवि हास्यके छीटे भी देता चलता है। भाषामे एक अद्भुत ओज है, प्रवाह है। कथन शैली एकदम नवीन एवं परम्पराके प्रभावसे मुक्त है। कविने 'गद्य हृद्य, पद्य वध्य' कहकर गद्यकी प्रशस्ति गाई है। यह आगामी गद्य प्राचुर्यकी भविष्यवाणी भी बनती है। कविकी अकालमृत्युसे कन्नड़की अकथनीय हानि हुई है। मुद्ण वास्तवमे आधुनिक युगके भोरका तारा है।

उन्नीसवीं शताब्दीका उत्तरार्ध भारतभरमे एक संक्रांति युग है। विज्ञानके नवीन आविष्कार, रेल, तार, आदिका आगमन एक नवीन युगकी आगमनवार्ताको अपढ़ गँवार तक पहचानने लगे। इसका प्रभाव साहित्य पर भी पड़ा। अँग्रेजीके प्रसारने इस नवीन युगकी विचार-कान्तिमे बहुत बड़ा योग दिया।

सन् १८८५ से १९१९ के समयको हम साधनायुग कह सकते हैं। इसी समय आगामी युगकी क्रान्तिके लिए तैयारियाँ हो रही थी, मेघखण्ड एकत्रित हो रहे थे। राइस फ्लिट आदि पाश्चात्य विद्वानोंने 'एपिग्राफिका कर्णाटिका' आदि शोध प्रकाशनोंके द्वारा कर्नाटकके शिला-लेखोंकी रत्नराशियोंको प्रकाशमें लानेका स्तुत्य प्रयत्न किया। श्री एस. जी. नरसिंहाचार्य आदिने 'काव्यकला निधि' साहित्यमालाके अंतर्गत हस्त लिखित प्रतियोंको संशोधन कर छपवाया।

मैसूर नरेश चामराज ओडेयरके दरबारमे साहित्य रचना अपने पुराने ढर्रे पर हो रही थी। अभिनव कालिदास बसवप्प शास्त्री आदि कविगण संस्कृतकी आलंकारिक शैलीमे संस्कृत ग्रन्थोंके अनुवादमे लगे रहे। इस दलके प्रतिनिधि कवि है श्री बसवप्प शास्त्रीजी। इनका 'शाकुन्तल' अनुवाद हिंदीमे राजा लक्ष्मणसिंहके अनुवादकी भाँति आज भी प्रसिद्ध है। शेक्सपियरके 'अँथेलो' का अनुवाद भी इन्होंने कन्नड़मे किया। इनकी देखादेखी संस्कृतके नाटकोंके अनुवाद धड़ल्लेसे होने लगे। सुब्बाशास्त्री, अनन्तनारायणशास्त्री, अय्याशास्त्री आदि चामराज ओडेयरके उल्लेखनीय कवि, नाटककार हैं।

सन् १९०७ ई. में स्व. महामहोपाध्याय श्री रा. नरसिंहाचार्यजीने 'कवि-चरिते' का प्रथम भाग लिखा। यही पहला समय था जब कन्नड़के सभी कवियोंकी सभी कृतियोंका विस्तृत इतिहास प्रस्तुत हुआ। इसने प्राचीन कन्नड़की रत्नराशियोंको कन्नड़ जनताके समक्ष प्रस्तुत किया। कन्नड़ साहित्यके नवोदयमें इसने महत्वपूर्ण योग दिया। इस ग्रन्थके दो अन्य भाग हिन्दीमें आचार्य रामचन्द्र शुक्लजीके इतिहासकी भाँति आलोकस्तम्भ हैं।

उत्तर कर्नाटकके धारवाड़में कन्नड़ विद्यावर्धक संघकी स्थापना १८९० ई. में हो चुकी थी। उसके मुखपत्र 'वाग्भूषण' ने साहित्यिक जागृति तथा निर्माणमें संस्मरणीय योग दिया। काँग्रेसकी स्थापना इस समय तक हो चुकी थी। तिलक, विवेकानन्द, अरविन्द, बंकिमचन्द्र आदि महानुभावोंके सिंहकण्ठसे सारा देश जागृत हो रहा था। एक नूतन चेतना देशके भीतर अँगड़ाई ले रही थी। कर्नाटक भी इससे अछूता नहीं रहा। इस नव जागृतिके अग्रदूत हैं सर्वश्री शान्त कवि, कडवा राघवेन्द्र-राव, डेप्युटि चैन्नबसप्पा, एम. बेकटकृष्णय्या आदि। शान्त कविके विद्यारण्य काव्य' में कर्नाटकमें राष्ट्रीय चेतनाका मन्त्र फूँका। इसी समय कर्नाटक कुल पुरोहित श्री आलूर वेक्टराव अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'कर्नाटक गत वैभव' (१९१७ ई.) लिखा। इस पुस्तकने हिन्दीमें मैथिलीशरण गुप्तजीकी 'भारत भारती' की भाँति लहर दौड़ा दी।

सन् १९१४ ई. में बेंगलूरमें 'कन्नड़ साहित्य परिषद' की स्थापना हुई जिसकी तुलना हम 'नागरी प्रचारिणी सभा'से कर सकते हैं। परिषद्की स्थापना कन्नड़ साहित्यके इतिहासमें एक महत्वपूर्ण घटना है। इसकी स्थापनाके पश्चात् कन्नड़ साहित्यके नवोदयकी रूपरेखा स्पष्ट हो चली। इस संस्थाने कर्नाटक एकीकरण, कन्नड़ साहित्य संशोधन आदि कार्योंमें महत्वपूर्ण योग दिया है। इसी समय कन्नड़ भाषाको पुनरुज्जीवित करनेके लिए कर्नाटक संघोकी स्थापनाका एक आन्दोलन उठ खड़ा हुआ। बेंगलूरके सेंट्रल कालेजमें इसी समय 'कर्नाटक संघ' की स्थापना हुई जिसने नवयुवकोमें भाषा-प्रेम जगानेमें अद्भुत कार्य किया। सन् १९१९ ई. में 'प्रबुद्ध कर्नाटक' पत्र (जो पीछे मैसूर विश्वविद्यालयका मुखपत्र बना) निकला। कर्नाटक साहित्यके संशोधन एवं निर्माणमें इसने अद्वितीय सेवा की है।

पाश्चात्य साहित्य सम्पर्कके कारण उपन्यास, कहानी आदि विविध साहित्य प्रकारोंका आरंभ एवं विकास इसी समयसे होने लगा। हमें पहले स्पेन्सर और मिलके उपन्यासोंके अनुवाद मिलते हैं और बादमें अनेक बगला उपन्यास कन्नड़में अनूदित हुए। बाबू बंकिमचन्द्र चटर्जीके सभी उपन्यासों का सफल अनुवादकर स्व. श्री बी. वेंकटाचार्यजीने कन्नड़ लोकके सामने एक नया आलोक उपस्थित किया। उधर उत्तर कर्नाटकमें स्व. श्री गळगनाथने मराठीके सुप्रसिद्ध उपन्यासकार स्व. हरिनारायण आपटेके सभी उपन्यासोंका सफल अनुवादकर कन्नड़ियोंमें वाचनाभिरुचि जगाई।

इसी समय उत्तर कर्नाटकमें स्व. केरूर वासुदेवाचार्यने 'इन्दिरा' 'भ्रातृ-घातक औरगजेव' आदि मौलिक उपन्यास लिखे।

कन्नड़ उपन्यास साहित्यका वास्तविक आरम्भ स्व. श्री एम. एस. पुट्टणाजीसे होता है। उनका "माडिदुण्णो म्हाराय" (जैसी करनी वैसी भरनी) (१९१५ ई.) कन्नड़ प्रथम मौलिक उपन्यास है जो विश्वके किसी भी श्रेष्ठ उपन्याससे टक्कर ले सकता है। चरित्र-चित्रण, वातावरण सृष्टि आदिमे यह उपन्यास आज भी अद्वितीय है। तत्कालीन समाजका जो यथार्थ-चित्रण इसमें मिलता है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। भाषा इतनी मुहावरेदार, इतनी चलती, वातावरण इतना घरेलू है कि सामाजिक उपन्यासोंके लिए वह एक आदर्श बना, आलोक स्तम्भ बना।

श्री एस. जी. नरसिंहाचार्य, एम. ए. नरसिंहाचार आदि कविगण इस युगमे इतिवृत्तात्मक कविताएँ लिखते रहे। एस. जी. नरसिंहाचार्यजीका 'उत्तमनराज्य' इस युगकी एक उत्कृष्ट कविता है। दक्षिण कन्नड़ जिलेके श्री पञ्जे मंगेशराव बी. रामराव, गोविन्द पै तथा मैसूरके श्री एस. जी. नरसिंहाचार आदिकी कविताओंमें प्राचीन सम्प्रदायोकी शृङ्खलासे मुक्त होनेकी आकुलता दर्शित होती है। पञ्जे मंगेशराव, पण्डित तारानाथ आदि लेखकोंने अपने छोटे निबन्धोंकी रचनाके द्वारा कन्नड़ साहित्यके इस अगकी श्रीवृद्धि की।

२० वी शताब्दीके प्रथम चरणमे समग्र भारतमे जो राष्ट्रीय जागृति हुई, उसमे कर्नाटकका भी पर्याप्त योगदान था। मराठीमे लोकमान्य तिलकका साप्ताहिक 'केसरी' कन्नड़में भी गर्जन करने लगा। उनकी महान् कृति 'गीता रहस्य' का अनुवाद भी कन्नड़मे हुआ। इस प्रकार देशभक्तिकी उत्तुंग तरंगसे आधुनिक कन्नड़ पत्रकारिताका जन्म हुआ। इन पत्रोंने कर्नाटकमे जनजागृति एवं साहित्य निर्माणमें अद्भुत योग दिया है। इनमे स्व. वेकटकृष्णय्याजीका 'सम्पदभ्युदय' ति. ता. शर्माका 'विश्वकर्नाटक' मुखीडुकृष्णरावजीका 'कर्नाटक वृत्त' और 'धनञ्जय' आलूरु व्यंकटरावजीका 'जयकर्नाटक' तथा स्व. राजगोपाल कृष्णरायजीकी 'कृष्ण सूक्ति' आदि मुख्य हैं। इन पत्र-पत्रिकाओंने साहित्यके प्रसारके साथ-साथ प्रचलित विषयोंकी अभिव्यक्तिके लिए आवश्यक भाषा शैलीका भी निर्माण किया।

इस समयके राजनैतिक जागरणने साहित्यिक प्रयासोंको भी सम्बल प्रदान किया। १९१४-१९१८ का स्वशासन आन्दोलन और १९२०-२१ का असहयोग-आन्दोलन आदिने साहित्यको एक नई गति दी। भाषावार प्रान्त आन्दोलन तथा कर्नाटक संघ आन्दोलनोंने भी इस नवोदयमे अपूर्व योग दिया।

इस ईषदवलोकनसे कन्नड़ साहित्यकी आरम्भसे सन् १९२० तककी गतिविधियोंका थोड़ा-बहुत परिचय पाठकोंको मिल गया होगा। कन्नड़

साहित्य प्रारंभमे सस्कृत साहित्यसे अनुप्राणित था और आज उसके नवोदयमें पाश्चात्य साहित्यने नवीन प्राण-चेतना दी है। समन्वय कन्नड़ साहित्यकी विशेषता है। इस दीर्घ कालखण्डमे कितनी ही धाराएँ आई किन्तु नवागत जलने प्राचीन जलको मिटाया नहीं। प्रतिभा नवनवोन्मेषशालिनी है, जीवन नवनव है (नवोनवो भवति जायमानः—ऋग्वेद) और सौन्दर्य तो नवीनताका ही दूसरा नाम है। सत्यं शिवं सुन्दरंकी त्रिवेणी ही साहित्य है। यही समन्वय, यही पाचन शक्ति सजीवताका लक्षण है। कहना न होगा कि यह सजीव स्पन्दन कन्नड़ साहित्यमे भी है। मनुष्यका मन ही आज मानवके लिए एक समस्या बन गया है। वह ब्रह्मकी भाँति अगम्य एवं मायाकी भाँति अनिर्वचनीय बना है। इसको सुलझानेमें प्राचीन एव आधुनिक कवियोंने सफल प्रयास किया है; इसी प्रयासकी कहानी ही साहित्य है, मानवताका इतिहास है और इस मानवताके इतिहासके लिए कन्नड़ियोंकी भी किञ्चित् देन है।

[नोट—सन् १९२० से आज तकका कन्नड़ साहित्यका संक्षिप्त परिचय 'कवि-श्रीमाला-कन्नड़ : कुवेम्पु' मे दिया गया है।]



दत्तात्रेय रामचन्द्र बेन्द्रे

[काव्य-सञ्चय]

१. बेळगु

मूडल मनेया मुत्तिन नीरिन
 एरकऽव होयदा
 नुण्ण-न्नोरक ऽ व होयदा
 बागिल तेरेदू बेळकु हरिदू
 जगवेल्ल तोयदा
 होयतो-जगवेल्ला तोयदा ॥१॥

रत्नद रसदा कारंजीयू
 पुटपुटने पुटिदु
 ताने-पुटपुटने पुटिदु
 मघमघिसुवा मुगिद मोगी
 पटपटने ओडेदु
 ताने-पटपटने ओडेदु ॥२॥

एलेगळ मेले हूगळ ओळगे
 अमृतद बिंदु
 कंडवु-अमृतऽद बिंदु
 यारिरिसिरुवरु मुगिलऽमेलिं-
 दिल्लिगे तंदु
 ईग-इल्लिगे तंदु ॥३॥

१. आलोक

[यह कविता महाकविकी प्रारम्भिक कविताओंमेंसे एक है। बेन्द्रेजी इस कवितामें सौन्दर्यप्रेमीके रूपमें सामने आते हैं, किन्तु उनका सौन्दर्यानन्द ऐन्द्रिय सौन्दर्योत्थास नहीं है। कवि अपने मानसमें तरंगित सौन्दर्यको प्रकृतिमें आरोपित करके किसी अज्ञात छविकी ओर संकेत करता है। कन्नड़ साहित्यमें जब यह कविता प्रथम बार प्रकाशमें आई तो अपनी नवीन भाव-व्यञ्जना एवं नवीन दृष्टिकोणके कारण सर्वाधिक जनप्रिय बनी।]

प्राचीगृहके समक्ष किसीने मोतीके पानीको उलीचा है।
मानों किसीने उस घरको मोतीके साँचेमें ढाल दिया हो!
किन्तु कितना कोमल, चिकना शिल्प है! उस घरका द्वार
खोलकर सर्वत्र किसीने रश्मिका जल छिड़क दिया है। सारा
जग उस कान्तिजलमें आप्लावित होकर जगमगा रहा है॥१॥

रत्नरसका फव्वारा ही फूट पड़ा है, अपने आप छलककर
फूट पड़ा है। महकनेवाली कलियाँ चटक रही हैं और
अपने भीतरके सौरभको सर्वत्र विकीर्ण कर रही हैं॥२॥

पत्रोंपर, कुसुमोंमें, अमृतके बिन्दु दिखाई दे रहे हैं। रात
बीतते न बीतते किसने इनको आकाशसे, स्वर्गसे लाकर अब इधर
रख दिया है? किसने रख दिया है॥३॥

तंगाळीया कंयोळगिरिसी
 एसळीना चवरि
 हूबिन-एसळीना चवरि
 हारिसिबिट्टरु तुंबिय वंडु
 मैयेल्ला सवरि
 गंधा-मैयेल्ला सवरि ॥४॥

गिडगंटेया कोरळोळगिंद
 हक्कीगळ हाडु
 होरटितु-हक्कीहाडु ।
 गंधर्वरा सीमेयायितु
 काडिना नाडु
 क्षणदोळु-काडिना नाडु ॥५॥

कंडितु कण्णु सविदितु नालगे
 पडेदीती देह
 स्पर्शा-पडेदीती देह ।
 केळितु किवियु मूसितु मूगु
 तन्मयवी गेहा
 देवर-दी मानसिक गेहा ॥६॥

अरियडु अळवु तिळियडु मनवु
 काणऽदो बण्णा
 कण्णिगे-काणऽदो बण्णा
 शांतीरसवे प्रीतीयिंदा
 मैदोरीतण्णा
 इडु बरि-बेळगल्लो अण्णा ॥७॥

किसने मलय मारुतके हाथ कुसुमकर्णिकाका चँवर देकर भेजा है। (मलयमारुतका मन्द-मन्द संचार ऐसा लग रहा है मानों कोई कुसुमोंके कोमल चँवर डुला रहा हो)। अलिकुलोंकी देहोंपर सुगन्ध छिड़ककर किसीने उड़ा दिया है। उनका मन्द-मन्द मधुर गुंजार सुनाई दे रहा है। उनकी सुगन्धि चारों ओर फैल रही है ॥४॥

तरु-गुल्मोंके भी कण्ठ फूट पड़े हैं। अतः विहगावलियाँ मीठी-मीठी तान छेड़ रही हैं। (सबेरे-सबेरे सर्दीमें पक्षी पेड़ोंके पत्तोंकी आड़में बैठकर गाते हैं उनको देखकर कवि कल्पना करता है कि पेड़-पौधोंके भी कण्ठ फूट पड़े हैं) उस अलौकिक गान माधुरीसे सारा वनप्रान्तर गन्धर्व लोकमें परिणत हो गया है। पल भरमें गन्धर्व लोक ही इधर आ उपस्थित हो गया है ॥५॥

आँखोंने देखा, जिह्वाने आस्वादन किया। त्वचाने स्पर्श सुखका अनुभव किया। कानोंने श्रवणसुख पाया। नासिकाने घ्राण सुख प्राप्त किया। इस प्रकार पंचेन्द्रियोंको भी तृप्त तथा तन्मय करनेवाले इस आलोकका सौन्दर्यलोक भगवानका मानस मन्दिर ही है ॥६॥

इस अवर्णनीय आलोककी कल्पना ही हमारी सामर्थ्यके परे है। मन उसके निगूढ़ रहस्यको समझ नहीं पाता। उसका रंग आँखें देख नहीं पातीं। कारण क्या है, भाई? यह केवल आलोक नहीं है, 'शान्ति' रस ही विश्वमें प्रेमसे आलोकके रूपमें प्रकट हो गया है ॥७॥

२. चित्ति मलेय सज्जे

कुरुडु प्रीतिय हांग
कुरुडु चित्ति मलेये
मुगुळु नगि सुत्तुरुळिसि
सुरदत्त सुरदाव ॥१॥

एत्तेनो बित्तेनो
मिचिन मुत्तेनो
कणमच्चि तेरेवुदराग
हरदाऽरिगे हरदाव ॥२॥

इदिरु गुडुद तलेगे
मोड मुसुकेळेवाग
बदिय गुडुद म्याले
बिसिलु मै च्याचाव ॥३॥

तोपु तोटद गाळि
नुगि नुसुळि बंदु
हुल्लुगावला सवरि
बैतला बाच्याव ॥४॥

गिड बळिळ एलि एलि
तोय्द तेंगिन गरि
बेळिळ सुळि बरेदांग
मिातमीऽरि मिच्याव ॥५॥

२. चित्रा नक्षत्रकी वर्षाकी सन्ध्या

[इस कवितामें पहले सन्ध्याकी धूप, वर्षाकी बूंदों तथा अस्तंगत सूर्यकी रश्मियोंका क्रमिक वर्णन है । उसके पश्चात् साँझको घर लौटनेवाले कृषकोंका चित्र, सन्ध्या समय मुहाग गानेवाले खगकुलोंके स्वर-माधुर्य आदिका मार्मिक चित्रण है ।]

अन्धे प्रेमकी भाँति अन्धी चित्रा नक्षत्रकी वर्षा
स्मितिकोरककी लहरियोंको सर्वत्र विकीर्ण कर रही है ॥१॥

कोई वस्तु अुठती-सी दीख रही है, कोअी गिरती-सी गोचर
हो रही है । क्या वे विद्युतके मोती हैं ? पलक मारते ही वे
मोती कोसों दूर तक बिखरकर जा रहे हैं । सारे पथको
मणिमुक्ता-मण्डित बना रहे है ॥२॥

सामने दिखाई देनेवाले टीलेको मेघसमूह अवगुण्ठन पहना रहे
हैं । इस बगलके टीलेपर धूप अपने अंगोंको फैलाकर अंगड़ाई
ले रही है ॥३॥

अमराइयों एवं कुओंसे आनेवाला समीर घूम-घूमकर भीतर
प्रवेश कर रहा है और मैदानकी हरी-भरी दूबके लोल कुन्तलोंको
सँवारकर माँग काढ़ रहा है ॥४॥

वनस्थलियाँ, लताएँ, तथा उनके चित्र-विचित्र पत्र,
जलसिंचित नारिकेलके पत्ते किसी कलाकारके द्वारा खचित
रजतरेखाकी भाँति झिलमल झिलमल झिलमल रहे हैं ॥५॥

पडुवलक मुगिद किरण
मूडलक चिम्मिकोंडु
अरिषिण कुंकुम तंदु
मरद्हणिगे हंच्याव ॥६॥

संजि सूर्यानि हेगल
जरद सेल्लेद सोगि
नविलगोरळिन मुगिल
सेरिगे बीस्याव ॥७॥

होलदंचिन हसुर बयलु
मुत्तिन सेसे तळेदु
दुडिदवर पादक्कंत
हडदि हास्याव ॥८॥

दिनगूलिगे दुडिदु दणिदु
तणिदु होरटवर मारि
एदेयेत्तर बेळेगे कळस
इट्टांज मेरेदाव ॥९॥

हदक्क हवणागि बंद
मळेगे नेनेनेनेदु नेनिसि
बरुव सुगिय चित्र
अवर चित्त बरेदाव ॥१०॥

गद्गल्लद हंचि
कण्जोगि हसिर हणि
इळिद बेवरिन नडुवे
तोळेदु एद्दाव ॥११॥

पश्चिम दिशासे सिमटनेवाली किरणें पूर्वकी ओर छल्लाँग मार रही हैं, तरु शिखाओंपर झिलमिल आभा हलदी-रोलीके टीके जैसी प्रतीत होती है । विवाहके समय वधूके माथेपर हरिद्राकुंकुमका लेप किया जाता है ॥६॥

सन्ध्या मानो रविके स्कन्धपर विराजमान जरीका उत्तरीय हो, मयूर पंख जिस प्रकार मयूरके नील-कण्ठपर आच्छादित होता है उसी प्रकार सन्ध्या आकाशपर आच्छादित है । अस्तंगत रविकी रंगीन किरणें नील नभपर छा रही हैं ॥७॥

खेतोंकी हरित शस्य भूमि श्रम करनेवाले कृषकोंके मार्गमें मुक्तामण्डित पाँवड़े बिछा रही है ॥८॥

दिनभर श्रम करनेवाले श्रान्त श्रमिकोंके वदन छातीतक उठे इन पौधोंके कलशकी भाँति, किरीटोंकी भाँति आनन्दकी दीप्तिसे जगमगा रहे हैं ॥९॥

समयपर समनुपात वर्षाको देखकर उन कृषकोंकी चित्त-भित्ति पर आगामी चैतकी चारु छटा अंकित हो रही है ॥१०॥

कृषकोंके चिबुक, कपोल, ललाट एवं भ्रू सीमापर गोदना स्वेदसलिलसे निखरी हरीतिमाको झलका रहा है ॥११॥

सिंगारिल्लदी सोबगु
सोगसि-जीवके मुद्दु;
सोत दारिगर कण्णु
मनसु कद्दाव ॥१२॥

चवरि जोळद तेनेये
एरडु बदिगे सरिदु
अवर मुखरेद मुखके
चवर हिडिदाव ॥१३॥

हगलु मल्लाडके कळेदु
इरुळु वसतिगंत
बेळ्ळक्कि तोरणगट्टि
बेळवलक्के नडेदाव ॥१४॥

बयलु गुडिसलद जीव
काडु-गूडिन हक्कि
तम्म सरिजोडि माडि
सोबाने हेळ्याव ॥१५॥

मुच्चंजे मुगिदाग
सोगिगौरिय दनिये
तेलिब्रुवते नाडु
किवियागि केळ्याव ॥१६॥

प्रकृति नटीका यह अनलंकृत सौन्दर्य जीवनको कितना मुग्ध बनाता है ! श्रान्त पथिकोंके मन व नयनोंको पुलकित कर रही है इन खेतोंकी हरियाली ! ॥१२॥

ज्वारकी बालियाँ रास्तेके दोनों ओर खड़े होकर मार्गमें जानेवाले उन श्रमिकोंके मुखोंपर चँवर डुला रही हैं ॥१३॥

सारा दिन पर्वत प्रदेशमें व्यतीतकर बलाक पक्षी-गण रातको विश्रामके लिए पंक्ति-पंक्तिमें इन खेतोंसे आ रहे हैं, वह ऐसा दीखता है मानों इन खेतोंके लिए कोई बन्दनवार बँधा हो ॥१४॥

मैदान व कुटियोंमें रहनेवाले जीव, वृक्षोंके नीड़ोंके विहग अपने साथियोंके साथ सुहागके गीत गा रहे हैं ॥१५॥

गाढ़ान्धकारके समाप्त होनेपर सारी भूमि कान लगाये है मानों मन्द-मन्द गन्धके साथ वनदेवीके संगीतकी तरंगें भी आ रही हैं ॥१६॥

३. बेळुदिंगळ नोड ५

बेळुदिंगळ नोड ५

बेळुदिंगळ नोडु ॥ टेक ॥

दनकरद कालिन धूळि

संजेय हूळि

मुगिल मुट्य ५ द

मुगिल मट्यद ॥

गीधूळि लग्नक इत्त

कैय हिडिदित्त

कैय हिडिदित्त ५

चंद्रिकी चंद्रमर जोड ५

बेळुदिंगळ नोड ५ ॥ १ ॥

कलिकप्पु एल्लिनू इल्ल

ओंदे सवनेल्ल

एल्लनू नुणुप ५

एल्लनू नुणुप ॥

इदु हालुगडलिन ५ सीमि

चंद्रमने स्वामि

चंद्रमने स्वा ५ मि ५

एनेथ हंदरद ई ५ ड ५

बेळुदिंगळ नोड ५ ॥ २ ॥

३. चन्द्रिकाको देखो न !

[चन्द्रिकाको देखो न, चन्द्रिकाको देखो न ! कवि सौन्दर्य, प्रेम विहीन जड़ीभूत जनताको देख क्षुब्ध हो रहा है, प्रभुकी अनन्य विभूति बिखरी हुई है। फिर भी मानवकी दृष्टि उसपर नहीं जाती है, क्या ही विडम्बना है। सन्ध्याका समय है, गोधूलि वेला है। गाय बैल आदि चौपायोंको धूलिने सन्ध्यारागको ही आच्छादित कर डाला है। वह ऐसा लगता है मानो धूलिने सन्ध्याको मिट्टीमें गाड़ दिया है। वह धूलि अन्तरिक्षके वक्षका स्पर्श कर रही है।]

चन्द्रिकाको देखो न ! चन्द्रिकाको देखो न !!

इधर गोधूलि वेलामें (विवाह आदि मंगल कार्योंके लिए पवित्र मुहूर्त) चन्द्रिका तथा चन्द्रमाका पाणिग्रहण हुआ है, चन्द्रिकाको तो देखो न ! ॥१॥

कहीं भी कोई काली वस्तु नहीं, काला धब्बा तक नहीं है। सर्वत्र धवलमा छाई है, चिकनाहट ही चिकनाहट है, मृदुल मधुर चन्द्रिका ही चन्द्रिका है।

यह अखिल धरित्री ही क्षीरसागर बनी है। चन्द्रमा ही उसका प्रभु है। विवाह-मण्डपका कैसा वन्दनवार है ! चन्द्रिकाको तो देखो न ! ॥२॥

रोहिणिय एदेय केंपेळ्ळु
 गेळति अवनवळु
 नलीताळ मुंद ५
 नलीताळ मुंद ॥
 हाक्यार चिक्किगेळत्यार
 कृत्तिकी हार
 कृत्तिकी हा ५ र ५
 कळिलाक इद्दबिद् के ५ ड ५
 बेळुदिगळ नोड ५ ॥३॥

नेरेदवरु हरुह्दरु ऊदि
 मंत्रिसिद बूवि
 मेच्चु माटक्क ५
 मेच्चु माटक्क ॥
 नेलदवरु निद्दिय ५ यालु
 मुरु मुक्कालु
 मूरु मुक्का ५ लु ५
 अरहुच्चु एच्चत्तरु कू ५ ड ५
 बेळुदिगळ नोड ५ ॥४॥

मदुमगळ कण्णिन ५ बगी
 चंदिरन नगि
 सुत्त हरिद ५ द ५
 सुत्त हरिद ५ द ॥
 कंडवर बाळु मरिस्य ५ द
 तण्णगिरिस्य ५ द
 तण्णगिरिस्य ५ द ५
 इदु मायकारर बी ५ ड ५
 बेळुदिगळ नोड ५ ॥५॥

रोहिणी, चन्द्रमाके उन्नत वक्षपरके रक्तिम तिलके समान है । वह उसके सामने थिरककर चलती है, आनन्द-तन्द्रिल हो रही है, उनकी नक्षत्र सखियोंने डिठौनेके रूपमें उनको कृत्तिका हार पहनाया है (कार्तिक मासमें घर-घर प्रकाशदीप जल रहे हैं वे ऐसे लगते हैं मानो कृत्तिकाका हार किसीने चन्द्रमाको पहनाया हो) चन्द्रिकाको तो देखो न ! ॥३॥

रोहिणी और चन्द्रमाकी जोड़ीके स्निग्ध सौन्दर्यपर मुग्ध होकर उनके मित्रोंने जादूका भस्म उनपर फूँक दिया है ।

धरतीके निवासियोंमेंसे तीन चौथाई है, गाढ़निद्रामें डूबे हैं । जो जाग रहे हैं वे भी अर्धविस्मृत हैं, इस चन्द्रिकाको देखकर पागलसे हो गए हैं । चन्द्रिकाको तो देखो न ! ॥४॥

चन्द्रमाका यह मन्दहास दुलहिनकी आँखोंमें तरंगित होनेवाली कान्तिकी भाँति है । अत्र-तत्र-सर्वत्र यह दुग्ध-धवल चन्द्रिका व्याप्त हो रही है । दर्शकोंको परवश और आत्म विस्मृत कर रही है । जन-जनके शरीरव मनको शीतल बना रही है । दोनोंने (चन्द्रमा और चन्द्रिका) मिलकर सारे जगतको शान्ति सागरमें डुबोया है, ये दोनों जीवनकी सब प्रकारकी ज्वालाओंको शान्त कर रहे हैं । अतः सारा जगत ही ऐन्द्रजालिकोंकी, जादूगरोंकी बस्ती बना है । चन्द्रिकाको तो देखो न ! ॥५॥

सूसिरुव नगिय बगिहीरि
मदा तलेगेरि

धांग टिहक्कि ऽ

हांग टिहक्कि ॥

चीर्त ऽ द गिडा बिट्टोडि

गिडक सुत्ताडि

गिडक सुत्ता ऽ डि ऽ

बेप्पागेद काडूमे ऽ ड ऽ

बेळुदिंगळ नोड ऽ ॥६॥

मर मरद गोनीगेकूतु

हारि मै सोतु

तेप्पग ऽ गा ऽ लि ऽ

तेप्पग ऽ गाळि ॥

तूकडसत ऽ द तानीग

जंपु बंधांग

जंपु बंधां ऽ ग ऽ

इदु अदर तुप्पळद गू ऽ ड ऽ ।

बेळुदिंगळ नोड ऽ ॥७॥

हूत ऽ द सुगंधी जालि

गम गमा बेलि

तुळुकुतद गंध ऽ

तुळुकुतद गंध ॥

श्यावंति हूविन कंपु

इडिगिसितु तंपु

इडिगिसितु तंपु ऽ

इदु साकु बेरे एनु ब्या ऽ ड ऽ

बेळुदिंगळ नोड ऽ ॥८॥

इस प्रकार सर्वत्र बिछी हुई चन्द्रिकाको चन्द्रमाके मन्दहास का पान कर पक्षी-कुल उन्मत्त बने हैं और पागलकी भाँति जल्पना कर रहे हैं। अपने बसेरेको छोड़कर वृक्षोंके बीच आँख-मिचौनी कर रहे हैं। इस स्निग्ध सौन्दर्यमें क्या वन, क्या ग्राम, नगर सब चकित से रह गए हैं। चन्द्रिकाको तो देखो न ! ॥६॥

श्रान्त होकर स्तब्ध हो तरुशाखाओंपर पवन विश्राम ले रहा है। वह तन्द्रालस हो गया है। यह चन्द्रिका उस पवनके लिए हंस पंखोंकी कोमल शय्या बनी है। पवन इस पर आरामसे सो रहा है। चन्द्रिकाको तो देखो न ! ॥७॥

सुगन्धमय 'जाली' वृक्ष फूला है। फूलोंसे छलककर सुगन्धि मेड़ोंमें मँहक रही है, सारी कंटीली झाड़ियाँ भी इन फूलोंके कारण मँहक रही हैं। सेवन्तिका कुसुमकी सुगन्धने सारे वनको शीतलतासे भरपूर कर दिया है। बस, इससे बढ़कर और क्या चाहिए। चन्द्रिकाको तो देखो न ! ॥८॥

दणिसिरा हगलु हिंग्य ऽ द
कर्त्तलिंग्यद

बेरे ई का ऽ ल ऽ

बेरे ई काल ॥

नडु निद्वियोळगे इद्धांग
कनसु बिद्धांग ऽ

तेरे ऽ दद तणविकी ना ऽ ड ऽ

बेळुदिगळ नोड ऽ ॥९॥

जग धवळ गंग्याग मुळुगि
मै मना बेळगि

समाधियु हत्ति ऽ

समाधियु हत्ति ॥

मोडनू बेळ्ळगाग्याव

तेनी माग्याव

तेनी माग्या ऽ व ऽ

हालुणिसु एल्लकू पा ऽ ड ऽ

बेळुदिगळ नोड ऽ ॥१०॥

अरे मरवु माडुवी बंध

यावुदी छंद

यावुदी धा ऽ टि ऽ

युवुदी धाटि ? ॥

सविराग बेरसिद ऽ उसिर ।

इदक याहेसर

इदक याहेस ऽ र ऽ ?

अंबिकातनयनहा ऽ ड ऽ

बेळुदिगळ नोड ऽ ॥११॥

दिनकी श्रान्ति मिट गई है। श्रान्त करनेवाला दिन भी भाग गया है। अन्धकार भी कहीं डूब गया है। चन्द्रिकाकी इस मादक शक्तिमें हमें न दिनका भान है, न रातका। हम यह नहीं समझ पाते हैं कि यह स्वप्न है या सुषुप्ति। ऐसा लगता है मानों कोई मधुर स्वप्न देख रहे हैं। सर्वत्र शीतलताका साम्राज्य ही छा गया है। चन्द्रिकाको तो देखो न ! ॥९॥

सारा जग धवल गंगामें डूब गया है। उसमें तन-मन भी डूब गए हैं। सारा जग ही समाधिस्थ हो गया है। यहाँ तक कि काले मेघ भी उस धवलिमामें निमज्जित होकर धवल हो उठ हैं। पौधोंकी बालियाँ भी पक गई हैं। सारे जगको प्रकृति माता दूध पिला रही है। संसारके सब चराचर शिशु सदृश माताके उस अलौकिक स्तन्यपानमें मग्न हैं। चन्द्रिकाको तो देखो न ! ॥१०॥

हमको आत्मविस्मृत, अर्धविस्मृत करनेवाला यह गान, वह छन्द किसका है, किस तर्जका है ? माधुर्यकी रागिनीसे मण्डित हो श्वास चल रहा है। इसका क्या नाम है ? इसका नाम 'अम्बिका तनयका गीत' है, चन्द्रिकाकी ओर तो देखो न ! ॥११॥

४. श्रावण



श्रावणा बंतु काडिगे । बंतु नाडिगे ।
 बंतु बीडिगे । श्रावणा बंतु ।
 कडलिगे बंतु श्रावणा । कुणिद्हांग रावणा ।
 कुणिदाव गाळि । भैरवन रूप ताळि ॥
 श्रावण बंतु घट्टक्क । राज्य पट्टक्क ।
 बान मट्टक्क ।
 एर्याव मुगिलु । रवि काणे हाडे हगलु ।
 श्रावण बंतु होळिगळिगे । अदे शुभगळिगे ।
 होळिगे मत्त मळिगे ।
 आग्येद लग्न । अदराग भूमि मग्न ॥
 श्रावण बंतु ऊरिगे । केरि केरिगे ।
 होडेद झूरिगे ।
 जोकालि एरि । अडर्याव मरक हारि ॥
 श्रावण बंतु मनि मनिगे । कूडि दनि दनिगे ।
 मनद ननि कोनिगे ।
 ओडेदाव हाडू । रस उक्कताव नोडु ॥
 श्रावण बंतु ॥१॥

बेट्ट तोट्टाव कुतनिय अंगि ।
 हसिरु नोड तंगि ।
 होरटावेल्लो जंगि ।
 जात्रिगेनो । नेरदड्द इल्ले तानो ॥

४. सावन



[सावन कविकी प्रिय ऋतु है। उसके आगमनसे कविका मानस पुलकित हो झूमने लगता है। तो, पढ़िए कविके कण्ठसे सहज ही फूट पड़ी यह सावनी कविता !]

बन-बनमें सावन आया, नगर-नगरमें आया, बस्ती-बस्ती में आया, सागरके यहाँ भी सावनका आगमन हुआ है, वहाँ प्रभञ्जन भैरव रूप धरे रावणकी भाँति ताण्डव कर रहा है।

सावन घाटियोंमें आ गया है, प्रकृति राज्यका सिंहासना-रोहण कर रहा है, आकाश पर घटाएँ छा गई है। दिनमें ही सूर्यका मुख दिखाई नहीं दे रहा है।

सावन नदियोंमें आया। नदी तथा वर्षा इन दोनोंके लिए वही शुभ मुहूर्त है। उन दोनोंका विवाह सम्पन्न हो गया है। वसुन्धरा इन दोनोंके विवाहके आनन्दोल्लासमे मग्न है।

सावन गाँव-गाँवमें आया, ठाँव-ठाँवपर आया। उसके आगमनके कारण लोग आनन्दित हो पेड़ोंपर झूले डालकर झूल रहे हैं।

सावन घर-घर आया, तान-तानसे मिलकर मनके पल्लवोंमें भी गीतोंके कोरक लगे हुए हैं। उनसे मधुर-मधुर रस फूट पड़ा है। देखो न सावन आ गया है ॥१॥

पर्वतोंने, प्रस्तरोंने शैवालकी मखमली चादर पहनी है। हरि-याली देखो न बहन ! कही चल पड़े हैं ये शैल ! चहल-पहलसे भरे किसी मेलेको देखने। मानों इधर ही से जगकर मेलेके लिए चल पड़े हों।

बन बन नोडु ईग ह्यांग ।
 मद्रुविय मगन्हांग ।
 तलिंगे बासिंग ।
 कट्टिकोडू । नित्तव हर्षगोडु ॥
 हसिरुट्ट बसुरिय हांग ।
 नेला होला ह्यांग ।
 अरिसिन ओडेधांग ।
 होम्मताव । बंगार चिम्मताव ॥
 गुडुगुडु स्थावर लिंग ।
 अवक अभ्यंग ।
 एरितावन्नो हांग ।
 कूड्याव मोड । सुत्तेल्ल नोड नोड ॥
 नाडेल्ल एरिय वारि ॥
 हरिताव झरि ।
 हाल्लिन तोरि
 ईग याकऽ । नेलकेल्ल कुडिसलाक ॥
 श्रावण बंतु ॥२॥

जगद्गुरु हुट्टिद मास ।
 कट्टि नूर वेष ।
 कोट्ट संतोष ।
 कुणितद । तानऽन दणितद ।
 श्रावण बंतु काडिगे । बंतु नाडिगे ।
 बंतु बीडिगे । श्रावण बंतु ॥३॥

बन-बनको देखो, अब कैसे दूल्हेकी भाँति फूलोंका सेहरा पहने हर्षसे खड़े हैं, वे अपने हर्षको दबा नहीं पा रहे हैं।

धरती हरिताम्बर पहने गर्भिणी स्त्रीकी भाँति स्थित है। गर्भिणी स्त्रीकी भाँति जमीन, खेत सब अपनी देहमें हलदीका लेपन किए हैं। उनकी देहसे वर्ण-वर्णका स्वर्ण फूट रहा है। (सुनहले रंगकी बालियाँ फूट निकली हैं।)

टीला-टीला स्थावर चिन्ह बना है। मानों इन स्थावर चिन्होंका आभञ्जन करनेके लिए आकाशमें मेघ एकत्रित हुए हैं। जहाँ देखो वहाँ बादलके दलके दल हैं देखो न !

सारी भूमि टीलेकी भाँति है। उनपरसे निर्झरिणियाँ फूट रही हैं, नही निर्झरिणियाँ नहीं, वे दूधकी नदियाँ हैं। सावन अब सारी धरतीको दूध पिलाने आया है ! ॥२॥

सावन बहुत ही पवित्र मास है। जगद्गुरु भगवान श्रीकृष्ण तथा महर्षि अरविन्दने इसी मासमें जन्म लिया। विश्वरूप बिहारी बना सावन लोकको आनन्द-दान कर रहा है। घन-घन करके तान-तान छेड़ते सावन नर्तन कर रहा है। नाच कर थक रहा है। सावन आया बन-बनपर, नगर-नगरपर आया, बस्ती-बस्तीमें आया ॥३॥

५. हक्कि हारुतिदे नोडिदिरा ?

इरुळिरुळिळु दिन दिन बेळगे
सुत्तुमुत्तलू मेलके केळगे
गावुद गावुद गावुद मुंदे
एवे तेरेदिवकुव होत्तिन ओळगे
हक्कि हारुतिदे नोडिदिरा ? ॥१॥

करिनरे बण्णद पुच्चगळुंटु
बिळि-होळे बण्णद गरि-गरियुंटु
केन्नन होन्नन बण्ण बण्णगळ
रेक्केगळेरडू पक्कदलुंटु
हक्कि हारुतिदे नोडिदिरा ? ॥२॥

नीलमेघमंडल-सम बण्ण !
मुगिलिगे रेक्केगळोडेदवो अण्णा ।
चिक्केय मालेय सेक्किसिकोंडु
सूर्य-चंद्ररनु माडिदे कण्णा
हक्कि हारुतिदे नोडिदिरा ? ॥३॥

राज्यद साम्राज्यद तेने ओक्कि
मंडलगंडलगळ गड मुक्कि
तेलिसि मुळिगिसि खंड खंडगळ
सार्वभौमरा नेत्तियकुक्कि
हक्कि हारुतिदे नोडिदिरा ? ॥४॥

५. पक्षी उड़ रहा है, आपने देखा क्या ?

[जब पहले-पहल यह कविता प्रकाशमें आई, तो सभी लोग विस्मयसे अभिभूत हो गए। इस कविता द्वारा कन्नड़ काव्य-जगतमें एक नए मोड़की सूचना मिलती है।]

रात्रिके व्यतीत होनेपर दिन हो रहा है, अपने आलोकसे चमक रहा है। अत्र-तत्र सर्वत्र, नीचे, ऊपर तथा चारों ओर कोसों दूर आगे-आगे पलक मारनेके पूर्व ही पक्षी उड़ता जा रहा है। आपने देखा क्या ? ॥१॥

उसके श्याम तथा श्वेत वर्णके पुच्छ हैं। श्वेत तथा कान्तिमय जगमगानेवाले रंग-विरंगे पंख हैं। उसके दोनों ओर लाल-लाल, स्वर्ण वर्णके पंख हैं। पक्षी उड़ रहा है। आपने देखा क्या ? ॥२॥

नील मेघमेदुर उसका वर्ण है। उसका स्वरूप ऐसा विराट है मानो विराट व्योमके पंख उग आए हों। वह नक्षत्रोंकी माला डाले है। सूर्य-चन्द्र ही उसके दो नेत्र हैं। क्या आपने उस उड़ते हुए पक्षीको देखा ? ॥३॥

राज्य तथा साम्राज्योंकी बालियोंको सकेलकर, मण्डल, समर्थोंके दुर्गोंको तोड़कर, उनका नाश कर, वह पक्षी उड़ता जा रहा है। उसके उड़नेकी गतिमें विश्वके खण्ड-खण्ड डाँवाडोल हो रहे हैं। वह राजा-महाराजा, सम्राटोंके मस्तकोंको चूर्ण-चूर्ण कर रहा है और अनन्त पथमें जा रहा है। क्या तुमने उस उड़ते हुए पक्षीको देखा ? ॥४॥

युगयुगगळ हणेबरहव ओरसि
मन्वन्तरगळ भाग्यव तेरेसि
रेक्केय बीसुत चेतनेगोळिसि
होसगालद हसुमक्कळ हरसि
हक्कि हारुतिदे नोडिदिरा ? ॥५॥

बेळ्ळिय हळ्ळिय मेरेय मोरि
तिगळिनूरिन नीरनु हीरि
आडलु हाडलु ता हाराडलु
मंगळ लोकद अंगळकेरि
हक्कि हारुतिदे नोडिदिरा ? ॥६॥

मुट्टिदे दिग्मंडलगळ अंच
आचगे चाचिदे तन्नय चुंच
ब्रह्माण्डगळनु ओडेयलु एंदो
बल्लरु यारा हाकिद होंच
हक्कि हारुतिदे नोडिदिरा ? ॥७॥

युग-युगोंकी ललाट लिपिको मिटाकर वह विहग उड़ रहा है। मन्वन्तरोका भाग्य खोलकर अपने पंखोंको डुलाकर नवीन जीवन, नूतन चेतनाका सञ्चार कर रहा है। इस प्रकार सृष्टि एवं प्रलय करता जा रहा है। नवयुगके शिशुओंको आशीर्वाद दे रहा है। वह पक्षी सर्जन, सिञ्चन, एवं संहार करते पंख मारते उड़ा जा रहा है। आपने देखा क्या ? ॥५॥

वह विहग शुक्र नक्षत्रके आलोकमय लोककी सीमाको भी लाँघ रहा है। चन्द्र-मण्डलका पानी पीकर क्रीड़ा करनेके लिए, गान करनेके लिए, उड्डयन लीलाके लिए मंगल लोकके आँगनमें पहुँचकर वह पक्षी उड़ रहा है। आपने देखा क्या ? ॥६॥

वह दिग्-दिगन्तोंके छोरोंसे टकराया है, सीमाकी सीमाको भी अतिक्रान्त कर उसने अपनी चोंच मारी है। ब्रह्माण्डोंको फोड़नेके लिए न जाने किसने यह षडयन्त्र रचा है। इस प्रकार प्रचण्ड गतिसे पक्षी उड़ रहा है। आपने देखा क्या ? ॥७॥

६. तुत्तिन चील



अन्नब्रह्मद
 देगुलदल्लि
 बेळगू बैग
 छिळिछिटिबेंकि
 डोंबर पूजेयु,
 कागेय मंत्र
 गाळिय एडेयु,
 बोब्बेय गंटे
 अन्न ब्रह्मद
 देगुलदल्लि ! ॥१॥

नाद ब्रह्मद
 कगगवियल्लि
 मौनद वीणेगे
 करुळिन तंति,
 मिडिदू मिडिदू
 मुरिदवु बेरळु ।
 मिडुकी मिडुकी
 नोंदितु एदेयु
 नाद ब्रह्मद
 कगगवियल्लि ! ॥२॥

६. कौर की थैली

[कन्नड़की सर्वश्रेष्ठ प्रगतिवादी कविताओंमें इसका स्थान अन्यतम है ।]

अन्नब्रह्मके मन्दिरमें दिनरात अग्नि धधक रही है। उधर पूजा करनेवाला पुजारी डोम है। मन्त्र पढ़नेवाला कौआ है। शून्यका भोग लगा हुआ है। शोरगुल ही उधर घण्टा है। अन्नब्रह्मके देवालयमें शोर गुलकी घण्टी बजती है ॥१॥

नादब्रह्मके अन्धकारमय गह्वरमें मौनकी बीन बज रही है। उसमें अँतड़ियोंके तार बँधे हैं। उसको बजा-बजाकर उँगलियाँ टूट गई। उसको देख-सुनकर स्पन्दित हो हो, हृदय तड़प कर रह गया। नादब्रह्मकी अँधेरी गुफामेंसे मौनकी बीनकी तान निकल रही है ! ॥२॥

शब्द ब्रह्मद
 गुम्मतदल्लि
 हगलू इरुळू
 वेदद वाद,
 पाप पुण्यगळ
 जाळिगेयल्लि
 नेतिदे जोतिदे
 जीवद जेड
 शब्द ब्रह्मद
 गुम्मतदल्लि ! ॥३॥

देवुळवरिगे
 दयवे इल्ल !
 तित्तिरि तुंबिदे
 कूळिन कोटे !
 बिडुगण्णवरिगे
 काणुवुदिल्ल
 अमृतद तेगिन
 मदवंतहुडु !
 हसिदव बल्ल
 हसिवेय शूलि ! ॥४॥

शब्द ब्रह्मके गुम्बजमें दिनरात, वेद-वेदान्तोंके वाद-विवाद चल रहे हैं। पाप-पुण्यके जालमें जीवरूपी मकड़ी फँसी हुई है, इधर-से-उधर झूल रही है। शब्द ब्रह्मके गुम्बजमें यह सब हो रहा है। जीव पाप-पुण्योंके जटिल-कुटिल जालमें फँसकर तड़प रहा है, शब्द ब्रह्मके निलयमें क्या कहें ! ॥३॥

जो धनवान हैं, जिनपर लक्ष्मीकी कृपा है, उनमें दयाका नाम तक नहीं है। उनके भण्डार धन धान्यसे भरपूर हैं, किन्तु अनिमिष कहलानेवाले देवताओंकी परिस्थिति इनसे भी बुरी है। अनिमिष भी अन्धोंकी भाँति आँखोंके होते हुए भी देख नहीं पा रहे हैं। क्या कहें, वे अमृतका स्वाद ले-लेकर डकार ले रहे हैं। उन डकारोंका उन्माद उनकी आँखोंको बन्द किए है। क्षुधितोंकी परिस्थितिका पता उनको कैसे लगेगा, जिनके पेट भरे हैं? जो भूखा है, वही भूखकी वेदना को जानेगा ॥४॥

शिवा शिवा हे
 शिवमादेवा !
 अत्तितु कूगितु
 चीरितुजीव
 बायंगळदलि
 हुट्टिदमातु
 मुगिलिन किवियनु
 मुट्टलेइल्ल,
 हाडुव सभेयलि
 नरळ्वदुंटे ? ॥५॥

किक्किरि तुंबिदे
 भूमिय कणज
 कक्कसबडुतिदे
 बोक्कसदोडलु
 बाळिगितलू
 कूळे मेलो ?
 बरिदो बरिदु
 तेरवो तेरवु
 बडवर बगर
 तुत्तिन चीला ॥६॥

शिव, शिव, शिव महादेव कहकर जीव तड़प-तड़पकर बिलख-बिलखकर रो रहे हैं, चीख रहे हैं, चिल्ला रहे हैं। उनके मुहके आँगनमें जन्मी वाणी आकाशके कानोंतक पहुँची ही नहीं। गायक समाजमें कोई कभी रोता है? क्या गन्धर्व लोकमें भी कोई कलपेगा? ॥५॥

वसुन्धराका अखण्ड भण्डार धन धान्यसे आपूरित होकर फट रहा है। भण्डारोंके पेट अधिकारके कारण उदरशूलसे तड़प रहे हैं। क्या अन्न जीवनसे भी बढ़कर है, श्रेष्ठ है? क्या अन्नके सामने विराट् जीवन भी तुच्छ है, नगण्य है, क्षुद्र है? दीन-दलितोंके कौरकी थैली खाली ही खाली है, एकदम खाली है ॥६॥

देवरदोंदु
 गोरिय कट्टि,
 धर्मद धूपके
 बैकियनिक्कि
 गणगण बारिसि
 प्राणद गंटेय,
 साविन नोविगे
 कलमलवेद्दु
 नेलवन्नेल्ला
 तुत्तुवेनेंदु
 गदरुत्तिहुदु
 गर्जिसुत्तिहुदु
 बडवर बग्गर
 तुत्तिन चीलद
 ओळगिन ओळगिन
 ओळदनियोंदु ॥७॥

ईश्वरकी कन्न खोदूंगी, उसकी एक समाधि बनाऊँगी। उसको नष्ट-भ्रष्ट करके उसका मकबरा बनाऊँगी। धर्मके सुगन्धित दीप धूपमें आग लगाऊँगी। प्राणोंके घण्टोंको घन-घनाकर जाकर असहनीय मृत्युवेदनासे अवसादित नहीं, क्रुद्ध होकर सारी धरित्रीको कवलित कर लूँगी; एक कौर बनाकर निगल लूँगी। इस प्रकार दीन-दलितोंके कौरकी थैलीके अन्तरतमसे कोई ध्वनि उठकर धमका रही है, डटा रही है। गर्जन-तर्जन कर रही है, उसके गर्जनसे सारे देवताओंके आसन डोल उठेंगे। देवता थर्रा उठेंगे। अमरोंकी भी मृत्यु मुँह बाये आनेवाली है। और वह मृत्यु मन लोकसे नहीं पीड़ित, पद-दलित नग्न-भग्न तृषित-क्षुधितके क्रुद्ध हृदयके अन्तरालसे आएगी। सारे संसारमें प्रलय मच जाएगा ॥७॥

७. कुरुडुकांचाणा

कुरुडुकांचाणा कुणियुतलित्तु
कालिगे बिद्दवर तुळियुतलित्तो । ६
कुरुडु कांचाणा ॥

बाणंतियेलुब सा
बाणद बिळुपिना
काणद किरुगेज्जि कालाग इत्तो;
सण्ण कंदम्मगळ
कण्णीन कवडीय
तण्णन्नजोमाले कोरळोळगित्तो ॥ १ ॥

बडवर ओडलिन
बडबाऽ नलदल्लि
सुडु सुडु पंजु कैयोळगित्तो;
कंबनि कुडियुव
हुंब बायिले मै
दुंबिदंतुधो उधो एन्नतलित्तो; ॥ २ ॥

७. अन्ध काञ्चन

[युगवाणीकी इतनी मार्मिक एवं सशक्त अभिव्यक्ति कन्नड़ कवितामें अन्यत्र दुर्लभ है । अभावोंसे पीड़ित एवं प्रताड़ित कविकी व्यक्तिगत वेदनासे घुल मिलकर युग-व्यथा और भी तीखी हो गई है ।]

अन्ध काञ्चन ताण्डव कर रहा था, शरणागतोंको, पाँवों पड़नेवाले दीन-दलितोंको निर्मम होकर कुचल रहा था । अनवरत रूपसे उसका नृत्य चल रहा था ।

प्रसूता नारियोंकी ठठरियोंसे निर्मित साबुनकी भाँति चिकने अस्पष्ट दिखाई देनेवाले नूपुर किरणाभरण उसके चरणोंमें शंकृत हो रहे थे ।

वह काञ्चन नन्हें-मुन्हें बच्चोंकी आँखोंकी पुतलियोंकी ही कौड़ी बनाकर उसकी माला अपने गलेमें लटकाए था और वह माला उसे बहुत ही शीतल लगती थी ॥१॥

दीन-दलितोंकी जठराग्नि तथा देहकी बाढ़वाग्निसे जाज्वल्यमान मशाल उसके हाथोंमें थे । वह मशाल धधक रहा था, चमक रहा था ।

वह दीन-दलित एवं दरिद्रोंके आँसू पीरहा था और उससे स्फीत हो कर वह “उदय हो, उदय हो जिन्दाबाद” कहते हुए चिल्ला रहा था ॥२॥

कूलि कुंबळियवर
 पालिन मैदोगल
 धूळिय भंडार हणयोळगित्तो;
 गुडियोळग गणण, मा
 हडियोळग तनन अं
 गडियोळगे झणणण नुडिगोडुत्तित्तो;
 ह्यांगारे कुणिकुणिदु
 मंगाट नडेदाग
 अंगात बित्तो, हेगललि एत्तो; ॥३॥

कुलीका काम करनेवाले मजदूर, श्रमिकोंके शरीरपर जमी धूल ही उसके माथेपर भस्मकी भाँति शोभा बढ़ा रही थी।

मन्दिरोंमें घण्टाके बदले पैसेकी ध्वनि सुनाई दे रही थी। गण-गण हवेलियोंमें, दुमञ्जिले, तिमञ्जिले मकानोंमेंसे 'तन-तन' ध्वनि निकल रही थी। दूकानोंमें झनझनकी ध्वनि अनुरणित हो रही थी।

वह काञ्चन बन्दरोंकी भाँति अन्धाधुन्ध नाच रहा था। मदारियोंके बन्दरोंकी भाँति पैतरे बदल-बदल कर वह विकट रूपमें नाच रहा था और अन्तमें मुँहके बल गिर पड़ा। नहीं, फिर पीछेसे आकर कन्धोंपर सवार हो गया ॥३॥

—————

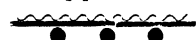
G. ३३००००००००

मक्कळिवरेनम्म ? मक्कळिवरेनम्म
 मूवत्तुमूर कोटि ? ॥ टेक ॥
 मूवत्तु मूरुकोटी, मूवत्तुमूर कोटी !
 मक्कळिवरेनम्म ? मक्कळिवरेनम्म ?
 मूवत्तुमूरुकोटि !
 ना हडेद
 मूवत्तुमूर कोटि ॥ टेक ॥

मूवत्तु मूरुकोटी, मूवत्तु मूरुकोटी !
 बयकेगळु बसिरुगळु हडेदद्दु हिंगिद्दु
 मूवत्तु मूरुकोटि !
 सूलगळु
 मूवत्तु मूरुकोटि !! १॥

हलकेलवु हुळुगळेन्नि ! हलकेळवु कुरुडु कुन्नि !
 केलकेलवु हुच्चुकुरि ! केलवु होस होच्च मरि !
 गंडुतनकेसो सोन्नि !
 लेक्कक्के
 मूवत्तु मूरुकोटी !! २॥

G. ३३००००००००



[यह कविता उस समय लिखी गई थी जब भारत पराधीनता की बेड़ियों में जकड़ा हुआ था । अपार सागरके बीच वसुन्धरा स्थिरासनपर ध्यान मुद्रामें बैठी है । उसकी बाईं गोदमें भारती अपने मुखको दायें हाथसे टिकाए बैठी है । अपने बाएँ हाथको उठा-उठाकर वह अपना दुखड़ा रो रही है । उसके चारों ओर विविध आकारके कोटि-कोटि प्राणी अस्तव्यस्त हो पड़े हैं । उस समय भारतमाता अपनी माता वसुन्धरासे पूछ रही है ।]

माँ, क्या ये मेरी सन्तान हैं ? मेरी सन्तान ! तैंतीस करोड़, तैंतीस करोड़, क्या ये मेरे बच्चे हैं, तैंतीस करोड़ क्या मेरे जिगरके टुकड़े हैं, क्या ये मेरे जाये बच्चे हैं ?

‘तैंतीस करोड़, तैंतीस करोड़ ! दोहद, गर्भ आदि दशाओंको पार कर मैंने जो पाया, क्या वे तैंतीस करोड़ ये ही हैं । ये मेरी सन्तान नहीं, ये तैंतीस करोड़ शूल हैं मेरे हृदयके । हाँ, तैंतीस करोड़ ! ॥१॥

उनमें कुछको कृमि कहो, कुछ अंगहीन, अन्धे, कुत्ते हैं । कुछ तो पागल हैं, कुछ अभी-अभी आँखें खोल रहे हैं, किन्तु पौरुषकी दृष्टिमे तो ये सब शून्य समान है । हाँ, गणनाके लिए तो तैंतीस करोड़ है ! ॥२॥

अत्तोंडु हत्तुकोटि ! इत्तोंडु हत्तुकोटि !
 सोदररु इदरु आदरद नुडिइल्ल;
 अत्तित्त हत्तुकोटी !
 हेसरिगे
 मूवत्तु मूरुकोटि !! ॥३॥

बीत नरपेतुगळिरा ! बातंथ प्रेतगळिरा !
 मण्णन्नु मुक्कुविरि, मसणदलि बिक्कुविरि !
 हारिरो जोळळुगळिरा !
 उसरिडुवे,
 मूवत्तु मूरुकोटि ! ॥४॥

सुण्णवन्नु सुरिद मेले कण्णीरनेरेये हाले ?
 बण्णद जीव कतकतने कुदियुववु
 इदुबदुके ?
 मूवत्तुमूरु कोटि !! ॥५॥

हंगिनरमनेय नरका-तंगुविरि-इह्हुदे मरुका ?
 हिडिबेरळ हिडियल्लि अडियरडरडियल्लि
 होरळि ओरलुविरि अकटा !
 अकटकट !
 मूवत्तु मूरुकोटि !! ॥६॥

उनमें भी एकता नहीं है, वे सन्तानें दस करोड़ उधर तो दस करोड़ इधर, इस प्रकार बिखर गई हैं। परस्पर सगे सम्बन्धी होनेपर भी उनमें आदर नहीं, प्रेम नहीं है। इधर-उधर दस करोड़ बिखर गए हैं, नाम मात्रके लिए तैंतीस करोड़, हाय री विडम्बना ! ॥३॥

है जीवन्मृतो, हे स्फीत प्रेतो, धूल चाटोगे, श्मशानमें बिलख-बिलखकर रोओगे। देखते रहो, फटकन (भूसी) की भाँति तुम सब उड़ जाओगे। मैं एक बार निश्वास लेती हूँ, चले जाओ यहाँसे, तैंतीस करोड़ नामर्द ॥४॥

चूनेका पानी पिलाकर आठ-आठ आँसू बहानेसे क्या वह दूध बनेगा ? रंग-बिरंगे जीव इधर उबल रहे हैं, प्रक्षुब्ध हो रहे हैं। अपना घर ही उनके लिए मल्लशाला बन गया है। क्या यह भी कोई जीवन है। धिक् तैंतीस करोड़, तैंतीस करोड़ !! ॥५॥

एहसानके महलमें आप सब ठहरे हुए हैं, किन्तु क्या वह नरक महल है ? क्या शासकोंको तुमपर करुणा है ? मुट्ठीभर, इनीगिनी उँगलियोंके चंगुलमें फँसे दो ही पाँवोंके नीचे तुम सब कुचलकर मरोगे। हाय-हाय मचाओगे, हाय, क्या कहूँ ? तैंतीस करोड़, तैंतीस करोड़ रोनेके लिए, बस ॥६॥

हाळधं होलेयरेंदू बीळधं हेणु एंदू
 होळु होळागिहुदु; आळु बाळागिहुदु
 एळिरो आळिरेंबे
 बाळिरो
 मूवत्तु मूहकोटि !! ॥७॥

हडदोडलुबंजेयाय्ते ? बाळमोदले संजेमाय्ते ?
 भारतिगे तलेभार इह्वळेंब विचार
 बाळवणु गिंजु आय्ते ?
 बरि शून्य
 मुवत्तु मूहकोटि !! ॥८॥

नन्नेदेय हालनेरसी नन्नोळिह बेळक बेरसी,
 वज्रदेहिगळेंदे गोर्नेमिचो एनेकंडे
 विजयविरलेंदु हरसी
 कळुहिदेनु
 मूवत्तु मूहकोटि !! ॥९॥

बसुरिनलि पडेदुदेनु ? होरगिल्लि हडेदुदेनु ?
 अररे ! बड ओडलुगळु सेरेमनेगळादवो !
 नन्नळलु केळदेनो
 एलेले
 मूवत्तु मूहकोटि !! ॥१०॥

इन तैंतीस करोड़ोंमें एकाध भाग अस्पृश्य कहलाकर बंट गया है, दूसरा भाग नारी के नामसे खण्ड-खण्ड हो गया है। तुम्हारा जीवन दासका जीवन बना है। उठो, जागो, मैं आशीर्वाद देती हूँ। जीवित हो उठो मेरी सन्तानों, तैंतीस करोड़ सन्तानों !! ॥७॥

क्या मेरा मातृत्व ही व्यर्थ हो गया, मेरा गर्भ ही मोघ हो गया? क्या जीवनमें प्रवेश करनेके पूर्व ही सन्ध्या हो गई, अन्धकार छा गया? भारतीको शिरो वन्दना है इस प्रकारका विचार ही काफी है, मैं सन्न रह जाती हूँ। क्या जीवनका अमृतमय फल ही व्यर्थ हो गया? शून्य, केवल शून्य और कुछ नहीं। तैंतीस करोड़, हाय तैंतीस करोड़ ! ॥८॥

अपने हृदयके अमृतको मिलाकर, अपने अंतरंगकी ज्योतिको देकर मैंने तुम्हारा पालन-पोषण किया। तुम लोगोंको मैंने कुलिश पर्वत समझा, विद्युतकी मञ्जरी रूपमें देखा। युग-युग जियो, ज्योतिर्मय जीवन बिताओ, 'विजयी भव' कहकर आशीर्वाद देकर भेजा, किन्तु तैंतीस करोड़, तैंतीस करोड़ !! ॥९॥

मैंने गर्भमें क्या पाया? क्या-क्या कल्पनाएँ की थीं, किन्तु बाहर इधर मैंने क्या पाया? हाय, हाय तुम्हारे दरिद्र तन तुम्हारे लिए कारागार बन गए! मेरी राम कहानी कौन सुनेगा! मेरे दुखड़ेको कौन सुनेगा? हाय, हाय तैंतीस करोड़ !! ॥१०॥

डिभगळनोडेदु बन्नि ! कंभगळनोडेदु बन्नी !
मैयल्लि मडगदिरि ! मनदल्लि अडगदिरि !
तायि इदो बंदेवेन्नी
ना पडेद
मूवत्तु मूरुकोटि !! ॥११॥

डिम्बोंको फोड़कर आ जाइए, कुम्भोंको फोड़कर आ जाइए ।
 देह ही आप लोगोंके लिए कारा न बने । आप लोगोंका पौरुष
 मनकी गहराइयोंमें न डूबे । 'हे मात । इधर देखो, मैं आ गया !'
 इस प्रकार कहते हुए दौड़ आओ—हे मेरे अमृत पुत्रो ! तैंतीस
 करोड़ सन्तानो !! ॥११॥

९. गंगावतरण

इळिदु बा तायि
इळिदु बा

हरन जडैयिंद
हरिय मुडैयिंद
ऋषिय तोडैयिंद
नुसुळि बा
देवदेवरनु ताणिसि बा
दिग् दिगंतदलि हणिसि बा
चराचरगळिगे उणिसि बा
इळिदु बा तायि
इळिदु बा ॥१॥

निनगे ॥ पोडमडुवे
निन्ननुडुतोडुवे
एके एडेतेडेवे
सुरिदु बा
स्वर्ग तोरेदु बा
बयल जरेदु बा
नेलदि हरिदु बा
बारे बा तायि इळिदु बा
इळिदु बा तायि
इळिदु बा ॥२॥

९. गंगावतरण

[वह कविता उस समय लिखी गई थी जब बंगालमें भीषण अकाल पड़ा था। इस रौद्र प्रसंगमें कवि गंगाको अव्याज करुणाका निरन्तर अवतार मानकर निमन्त्रण दे रहा है ।]

उतर आओ, माँ,
उतर आ !

हरके जटाजूटसे, हरि-चरणसे उतर आ, मुनिकी जंघासे
फिसलकर आ। देवताओंको सन्तृप्त करती आ, दिक्-दिगन्तोंको
आप्लावित कर उतर कर आ, चराचरोंकी तृषा मिटाती, सींचती
हुई आ। उतर आ, हे माता, उतर आ ॥१॥

तेरे चरणोंमें दीर्घ दण्ड हो, तेरे स्पर्शसे तन-मन पुलकित
हो, सर्वांग पुनीत हो। हिचकिचा क्यों रही है, बरस पड़ माँ ! स्वर्ग
तजकर आ, शून्य गगनकी अवहेलना कर आ, धरा पर फिर
प्रवाहमय हो, आ आ, आ मेरी जननी, उतर आ। उतर आ,
ओ माते, उतर आ ॥२॥

नम्र तलेयोळगे
 नम्र बेंबळिगे
 नम्र ओळकेळगे
 नुगि बा
 कण्णकण तोळिसि
 उसिर एळे एळसि
 नुडिय ससि मोळेसि
 हिगि बा
 एदेय नेलेयल्लि नेलिसि बा
 जीव जलदल्लि चलिसि बा
 मूल होलदल्लि नेलिसि बा
 इळिदु बा तायि
 इळिदु बा ॥३॥

कंचु मिचागि तेरळि बा
 नीरु नीरागि उरुळि बा
 मत्ते होडेमरळि होरळि बा
 दयेयिरद दीन
 हरेयळिद हीन
 नीरिरद मीन
 करेकरेव बा
 इळिदु बा तायि
 इळिदु बा ॥४॥

मेरे सिरपर आ, मेरी पीठपर आ, मेरे पीछे आ, नीचे नीचे आ, मेरे बाह्याभ्यन्तर मेरी नस नसमें घुस-घुस आ । मेरे नयनका कण-कण शीतल बनाकर आ, श्वास-श्वासके सूत्र-सूत्रको सींच-सींच आ । वाणीको अंकुरित करती आ, पुलक-पुलक प्रकट किए आ, आनन्द-तन्द्रिल होकर आ । हृदय देशको उर्वर करने आ, जीव जलमें चल-चलका चञ्चल बन आ । मूलाधारमें निवास कर आ । उतर आ, ओ माँ, उतर आ ॥३॥

विरल-विरल बन आ, तरल-तरल बन आ, नीर बन आ, शम्पा बन कम्प कम्पकर आ । उलट-पलटकर आ, थिरक-थिरक कर आ ।

मैं हूँ लक्ष्मीशून्य दीन, गत-यौवन, विगतोत्साह जलविहीन मीन बुला रहा हूँ, आ, अरे माई, उतर आ, माता ! उतर आ !! ॥४॥

करु कंड करुळे
 मन उंड मरुळे
 उहंड अरुळे
 सुळि सुळिदु बा
 शिव शुभ्र करुणे
 अति किंचिदरुणे
 वात्सल्यवरणे
 इळि इळिदु बा
 इळिदु बा तायि
 इळिदु बा ॥५॥

कोळेय तोळेववरु इल्ल बा
 बेरे शक्तिगळु होल्ल बा
 हीगे माडदिरु, अल्ल बा
 नाडि नाडियनु तुत्त बा
 नम्म नाडने सुत्त बा
 सत्त जनरन्नु एत्त बा

सुरस्वप्नविद्द प्रतिबिंब बिद्द
 उद्वुद्ध शुद्ध नीरे
 एरुचत्तु एद्द आकाशदुद्द
 धरेगिळियलिद्द धीरे
 सिरिवारिजात वरपारिजात
 तारा कुसुमदिदे
 वृंदारवंधे मंदारगंधे
 नीने तायि तंदे, ॥६॥
 रसपूरजन्ये नीनल्ल अन्ये
 सच्चिदानंद कन्ये
 बंदारे बारे, ओंदारे सारे
 कण् धारे तडेवरेने ?

वत्सको देख दौड़ती आनेवाली गायकी भाँति, माताकी भाँति, मेरे मनको प्रेमोन्मादमें मग्न करनेवाली हे माता ! द्यावा पृथ्वी तक व्याप्त ज्ञानकी प्रखर धारा दृश्यमान हो, चमक-चमक कर आ । हे शिवकी शुभ करुणा, अति किञ्चिदरुणा, वात्सल्य-वरुणा, उतर आ, हे माता उतर आ ॥५॥

हमारा मालिन्य प्रक्षालन करनेवाला कोई नहीं, अतः ओ माता, तू दौड़ती आ । तेरे अतिरिक्त अन्य शक्तियाँ त्याज्य हैं । ना, ना ऐसा नहीं करना, आ, न मेरी मैया ! हमारी नाड़ी-नाड़ीको कवलित करते बह कर आ, हमारे राष्ट्रको आवेष्टित करती आ, मृत जनोंमें जीवन सञ्चार करती आ, ऊपर उठती उद्धार करती आ ।

सुर मुनियोंके स्वप्नोंकी वस्तु, उन स्वप्नोंको प्रतिबिम्बित करती आ । हे उद्बुद्ध शुद्ध जल स्वरूपिणी देवी, जागकर उठी हुई तेरी देह वियन्चुम्बी बनी है, धरापर अवतीर्ण करनेवाली हे धीरा आ, उतर आ । स्वर्ग लोकके काञ्चनपद्म स्वर्गमन्दाकिनी श्रेष्ठ पारिजात तू ही है । हे तारा कुसुम अलंकारिणी, हे वृन्दार, वन्द्या हे मन्दार कुसुम गन्धी, तू ही हमारी माता-पिता है ॥६॥

तू रसके महापूरसे जन्मी है । तू कोई अन्य देवी नहीं है, सच्चिदानन्द परब्रह्मकी कन्या है । एक बार, कम-से-कम एक बार भूलकर ही सही, आ न मेरी माता ! हमारे नयनोंसे अश्रुजल अविराम रूपसे बह रहा है, उसे तेरे सिवा और कौन रोक सकता है ?

अवतारवेदे एंदारे तायि, ई अद्यःपातवस्रे
 हरके संदंते
 ममते मिदंते
 तुंबि बंदंते
 दुम् दुम् एंदंते
 दुडुकि बा
 निम्न कंदन्न हुडुकि बा
 हुडुकि बा तायि
 दुडुकि बा ॥७॥

हरण होसदागे होळेदु बा
 बाळु बेळकागे बेळेदु बा
 कै तोळेदु बा
 मै तळेदु बा
 इळेगिळिदु बा तायी
 इळिदु बा तायि
 इळिदु बा ॥८॥

शंभु-शिव हरन चित्ते बा
 वत्त नरहरिय मुत्ते बा
 अंबिका तनयनत्ते बा
 इळिदु बा तायि
 इळिदु बा ॥९॥

हे देवी, जननी तेरे इस अधःपातको ही लोग अवतार कहते हैं। फलीभूत प्रार्थनाकी भाँति आ, मूर्तिमान आर्द्र माताके रूपमें आ, मधुकरकी भाँति गुञ्जार करती पूर्ण हे आ, दुमदुम दुन्दुभि की भाँति नाद करती उमड़-उमड़कर, दुलकर-दुलकर अपने वत्सको ढूँढ़ ढूँढ़कर आ, ढूँढ़कर आ, न मेरी माँ, स्पन्दित प्रस्पन्दित हो, आ मेरी माता ! ॥७॥

हमारे आकुल प्राणोंमें नवीन जीवनको ज्योतित करती जगमगाती आ। जीवनको आलोकसे अनुप्राणित करती प्रवर्द्धमान होती आ, ज्योति बनकर आ। हाथ धोते आ, मूर्तिमान हो आ, इला पर उतर-उतर कर आ, ओ माई, उतर आ ॥८॥

शम्भु, शिव, हरकी चैतन्यस्वरूपिणी आ, दत्तात्रेय नरसिंहकी प्रियकरी मुक्ता स्वरूपिणी आ, अम्बिका तनयकी फूफी आ, ओ माता, उतर आ ! उतर आ !! ॥९॥

१०. सच्चिदानन्द

सच्चिदानन्द, सच्चिदानन्द, सच्चिदानन्द, सच्चिदानन्दों ।
सच्चिदानन्द ॥

सती-बा, हाकु रिगणा गगनदंगणऽदाऽगऽ ।
नन्न कालाग ॥
ओळगोळग कुदिव भूकंप,
होरग हसि तंप
मेले नरुगंपो । मेले नरुगंपु
बंतेल्ल नेलद बसिरिद । मनेयु नेलदिद । अन्न मणिंद ।
मैयु—
अदरिंदों-सच्चिदानन्द ॥१॥

बा हाकु रिगणा गगनदंगणऽदाऽगऽ ।
नन्न कालाग ॥
ना तोट्ट देहगळ लेक्क, इडुवर सोक्क ।
यमा नोडि नक्क ॥
चौर्यशि लक्षदा सिडिलु
हिडियली ओडलु
मुगिलिन्हांग सुडलो । मुगिलिन्हांग
सुडलु ।
निन्नुसिरु कट्टिदी बंध । ऐदर संद । कडलु एळोंद । कुणित-
स्वच्छंदों-सच्चिदानन्द ॥२॥

१०. सच्चिदानन्द

सच्चिदानन्द ! सच्चिदानन्द !! सच्चिदानन्द !!

सती :—आ मेरे प्रियतम विशाल गगनागणमे नाचते मेरे चरणोंमें नूपुर बाँधो । हम नर्तन करे । इस सृष्टि भूमिके भीतर प्रक्षुब्ध भूकम्प है, किन्तु बाहर शीतलता है, अपर सुगन्धि ही सुगन्धि है । सब वसुन्धराके गर्भसे आए हैं, घर (देह) भी मिट्टीका ही बना है । अन्न भी मिट्टीसे आया है, तन भी मिट्टीका ही है । हे सच्चिदानन्द ! ॥१॥

आ, मेरे चरणोंमें नूपुर बाँधकर, अनन्त गगन-मण्डलमें नर्तन करें । मैंने जितने जन्म धारण किए, उनको कौन बताया ? उनका लेखा-जोखा रखनेवालेको देखकर यमने अट्टहास किया । चौरासी लाख योनियोंके तड़ित आज इस देशको ही भस्म कर डालें । तुम्हारे श्वासको ही बाँधनेवाली यह देह पञ्चेन्द्रिय तथा सप्तव्यसनोसे आपूर्ण है । नर्तन स्वच्छन्द स्वच्छन्द है । आ, हम नृत्य करें ॥२॥

ना तोट्ट देहगळ लेक्क, इडुवरऽसोक्क ।

यमा नोडि नक्क ॥

सिगलोल्लि बेकु नी ननग जीव जीवाऽळाऽ ।

राजघननीळा ॥

नन ओडप ओडेदव यावा

नोवे नन जीवा

ईगिनीभावा । ईगिनीभावा ।

हगलिरुळु सोमरवि बंद । अखु मरविंद । मनद मकरंद ।

सुखि अरविंदों—सच्चिदानंद ॥३॥

सिगलोल्लि बेकु नी ननग जीव जीवाऽळाऽ ।

राजघननीळा ॥

सुत्तेल्लकत्तला ओळगे बेळगतद दीऽपाऽ ।

बा समीपा ॥

इदुयाव सीमेया चदुरु ।

निति नन्निदिरु ॥

बिट्टनिननदरो । बिट्टनिननदरु ।

इडु बेळक काणिकि तंद । इट्टु नन मुंद । चेंद बिसवंद

माडिसो दुंदों—सच्चिदानंद ॥४॥

सुत्तेल्ल कत्तला ओळग बेळगतद दीऽपाऽ ।

बा समीपा ॥

पति : इष्ट्याक हलबती बालि, बंदे मीनाऽक्षिऽ ।

प्राणवे साक्षि ॥

नीकूति बैकियनु नंबि

प्रोतियदकैंबि

कप्पुरद गोंबि । कप्पुरद गोंबि ।

चंद्रामराय बलु चंद । ओगटदाग अंद । कट्टि ओर्नपिंद ।

ताळिय नंदों—सच्चिदानंद ॥५॥

मैंने जितने जन्म धारण किए उनका हिसाब रखनेवालेको देखकर मन हँस पड़ा। हे जीवके जीव, तुम्हें जरूर मुझसे मिलना होगा, हे नील राजघन।

मेरी पहेलीको कौन बूझेगा ? वेदना ही मेरा प्राण है। वेदना ही मेरी वर्तमान स्थिति है, गति है। मैं तुम्हारे विरहमें पगली हो गई हूँ। दिनमें चाँद और रातमें सूरजको देखने लगती हूँ। इस प्रकार भ्रान्ति ही भ्रान्ति है। ऐसी परिस्थितिमें मैं तुमको ढूँढ़ने लगी। तुम हृदयमें मकरंद उँड़ेलनेवाले अरविद हो, हे प्रभु आओ न ॥३॥

तुम मेरे प्राणोंके प्राण हो, तुम्हारे दर्शनोंके लिए मैं लालायित हो रही हूँ, तड़प रही हूँ; किन्तु तुम निष्ठुर बने रहे भूलकर भी इधर नहीं आते। सर्वत्र अन्धकार ही अन्धकार है। चतुर्दिक् अन्धकारसे आवृत्त होनेपर भी आशा-दीप जल रहा है, आ मेरे समीप, हे प्रभु ! यह किस देहका सौन्दर्य है ? मेरे समक्ष खड़े हुए त्यक्त सौन्दर्य है क्या ? तेरे नेत्रोंसे छूटी दृष्टि है क्या ? ज्योतिका उपहार लाकर मेरे समक्ष रखो और उत्सव मनाओ, आनन्द लूटो हे विस्मयमय, सच्चिदानन्द ! चतुर्दिक्, सर्वत्र अन्धकार छाया है। भीतर ज्योति जगमगा रही है, आओ हे चिरन्तन ! ॥४॥

पति—इतना क्यों आलाप कर रही हो मेरी सखि ! हे मीनाक्षि, मैं आ ही गया, लो तेरे प्राण ही साक्षी हैं। तू आगपर भरोसा रखे और उसीको प्रेम समझ प्रतीक्षा किए बैठी रही हे कर्पूरकी प्रतिमा, हे अन्धकारमय हृदयवाली सखि ! चन्द्रमा बहुत ही सुन्दर है। (विवाहके पूर्व यदि छोटी बालिकाओंसे यह पूछा जाय कि उसके पतिका नाम क्या है, तो वह बोलेगी चन्द्रमा !) पहेलीमें तुमने वैसा बताया। तेरे गलेका माँगल्य भी मेरा ही है। इतना क्यों प्रलाप करती है मेरी सखि, लो मैं आ ही गया हूँ, मेरे प्राण ही इसके साक्षी हैं ॥५॥

इष्ट्याक हलबती बालि, बंदे मीनाक्षि
 प्रागवे साक्षि ॥
 एल्लेल्लु बेळकु इरलाक अळुति नी हाऽडिऽ ।
 ओडल मरिमाडि ॥
 नी नन्न शक्ति, न भक्ति
 तेरे यितऽ शुक्ति
 बेरेयिल्ल मुक्ती । बेरेयिल्ल मुक्ति ।
 निन नल्ल एल्लाराग ओंद । ओंद नूरोंद । इदर सवि मुंद
 तोरुवरविंदो—सच्चिदानंद ॥६॥

एल्लेल्लु बेळकु इरलाक अळुति नी हाडि ।
 ओडल मरि माडि ॥
 ओळ होरगु बेळकु नानिरल्लु याक निन हणतिऽ ।
 बार नन गेणति ॥
 तेरि तेरी निन्न एदिकदा
 बंदित हदा
 केळ ई पदा । केळ ई पऽदा ।
 गुरुदत्त सच्चिदानंद । सच्चिदानंद सच्चिदानंद । सच्चिदा
 नंदो ॥
 —सच्चिदानंद ॥७॥

ओळ होरगु बेळकु नानिरल्लु याक निन हणति
 बार नन गेणति ॥८॥

—————

सर्वत्र प्रकाश फैला है, तू गा-गाकर रो रही है। अपनी देहको भी भुलाकर, मिटाकर रोती है। तू मेरी शक्ति है, मैं तेरी भक्ति हूँ। भक्ति है तो मुक्ति दूर नहीं। तेरे हृदयकी शक्ति यदि खुलेगी तो समझो, वह मुक्ति उससे भिन्न दूसरी वस्तु नहीं है। सबमें वही एक तुम्हारा प्रियतम स्थित है, वही एकसे शत हुआ है, शतसे अनेक बना है, सर्वत्र व्याप्त है। इसका स्वाद तुम्हें पीछे ज्ञात होगा। माधुर्य की सुवृष्टि करनेवाला अरविन्द है। सच्चिदानन्द ! ॥६॥

चारों ओर अन्धकारके रहनेपर भी हृदय दीप जल रहा है। आ, मेरे समीप मेरे प्रियतम !

जब कि सर्वत्र आलोक बिछा है तो तू गा-गाकर अपने शरीरको तपाकर क्यों रोती है ?

बाह्य एवं आभ्यन्तर मैं ही ज्योतिके रूपमें हूँ तो तेरी प्रणतिकी क्या आवश्यकता है ? आ मेरी सखि ! समय आ गया है, हम दोनोंके मिलनकी शुभ घड़ी आई है, हृदयका द्वार खोल दे। सुन, मेरा यह गीत।

“गुरुदत्त सच्चिदानन्द ! सच्चिदानन्द सच्चिदानन्द !! सच्चिदानन्द ! सच्चिदानन्द !!” ॥७॥

बाह्याभ्यन्तरकी ज्योति मैं हूँ तो तेरे दीपकका क्या उपयोग ? चली आ मेरी सखि ! ॥८॥

११. कुणियोणु बारऽ !

कुणियोणु बारऽ
कुणियोणु बा ॥ टेक ॥

आ कागि
या कागि
कुणियोदु बेकागि
इल्द वण्णद सोगि । कुणि.....
हिग्गु हाकितु क्याकि
इरलारेनेकाकि
बा, बारऽ नन्नाकि । कुणि.....॥१॥

कूडोकि
हूडोकि
मुप्पत्त दूडोकि
हण बाकि हेण बाकि । कुणि.....
एसोंदु एणिस्याट
कासिन कुणिस्याट
साकातु सेणिस्याट । कुणि.....॥२॥

११. नाचें आ !

[अनुभूति, चिन्तन एवं कल्पनाकी त्रिवेणी है यह कविता । किन्तु इस विराट कविताकी प्रेरणा बना एक कौआ । एक दिन बेन्द्रेजीने एक कौआको धूपमें नाचते देखा और बस यह रस-धारा उमड़ पड़ी ।]

नाचें आ , नाचें आ ॥टेक॥

वह कौआ क्यों नाच रहा है जब कि उसके पास मोरपंख-सा एक रंग-विरंगा पंख भी नहीं है ? मयूरके पास नाचनेके लिए सुन्दर इन्द्रधनुषी पंख हैं । काले-कलूटे कौआके पास वह भी नहीं है, फिर भी वह नाच रहा है । आनन्दने केका की “ मैं एकाकी नहीं रह सकता । ” और अपनी प्रियसखीसे कहा—आ मेरी सखी, हम नर्तन करेंगे । आ , आ न मेरी सखी, हम नाचेंगे ॥१॥

प्रेम मिलन, आमोद-प्रमोद, इन सबमें हम वार्धक्यको भी दूर भगा देंगे । ऋण बाकी है, हमारे शवोंका गिरना भी बाकी है । किन्तु इन सबकी चिन्ताओंमें क्यों जरा-जर्जरित हों । आ, हम नाचें । कितना गिनते रहें, धन-धन, गिन-गिन, बस करोगे । कांचनका नर्तन भी हम बन्द करेंगे । जीवनके इस निरन्तर संघर्षसे मैं बाज आया । सखी, चलो हम नाचें, चलो न ॥२॥

क. कन्नड़ बें.—८

कीसरु

बासरु

इट्टरु निट्टुसुरु

कुणितानऽ आसरु । कुणि.....

हरिदरु नेत्तरु

उळ्ळवरु सत्तरु

ओळ्ळेवरु अत्तरु । कुणि..... ॥३॥

तीरद

तोरद

हाळु संसार अद

मीरिद भार अद । कुणि.....

बिसिदु.खदरिव्याक

हुसि सुखद परिव्याक

नक्कऽ सुनू बेक । कुणि..... ॥४॥

तिणि तिणिकि

इणिकिणिकि

ओळ होरगे हणिहणिकि

साकातु सुळ्ळेणिकि । कुणि.....

ई वदुकु बरि भ्रमि

तिकिदिमि गिमिगिमि

हांगोम्मि हेंगोम्मि । कुणि..... ॥५॥

जीवनमें श्रान्ति है, क्लान्ति है, पंक है, कलंक है। किन्तु शोक इनको सोचकर हम कब तक गहरी साँस लेते रहेंगे, कब तक प्रकट करते रहेंगे? आखिर करनेसे भी क्या लाभ? नर्तन ही हमारा अवलम्ब है, सहारा है। सखी चलो न, हम नाचें। सारी धरित्री ही रक्तरञ्जित हो जाए, रक्तकी नदी बह जाए। जो हैं वे भी मर गए और परिस्थितिके फेरको तो देखो, सज्जन ही रो रहे हैं। आ सखी इन सभी चिन्ताओंसे मुक्त हो हम नाचें ॥३॥

ये सासारिक झंझट अनन्त है, इतना ही नहीं वह दृश्यमान भी नहीं है। हमारी पकड़में नहीं आनेवाला यह सांसारिक जंजाल बहुत ही बोझिल है। उसका भार कौन वहन करे। इन सबको भूल जाओ, इन अनन्त चिन्ताओंको विस्मृतिमें डुबा दो और आओ न हम नाचें।

जीवनमें उष्णमय दुःख, तापदायक दुःख बिछा है, उसका ज्ञान क्यों प्राप्त करोगी। उसकी कल्पना ही क्यों करोगी? मृषा एवं मिथ्या सुखकी परवाह क्यों करती हो। हमें चाहिए हास्य, लास्य, चलो न हम नाचें ॥४॥

कण्ट उठा-उठाकर, इधर-उधर सुखके लिए झाँक-झाँककर में थक गया हूँ। अन्दर और बाहर सिर डालकर, आन्तरिक तथा बाह्य संघर्ष में व्यस्त रह-रहकर मैं थक गया हूँ। इस झूठी गिनती से, आकाश रोमन्थनसे मैं वाज आ गया हूँ। आ सखी, हम नाचें।

यह जीवन केवल भ्रम ही भ्रम है। धिक् धिक् हम नाचें आ। उस ओर एक बार, इस ओर एक बार, नाचें आ ॥५॥

अंतरलि

इंतरलि

नितल्लि नितिरलि

संतेय चितिरलि । कुणि.....

कण् ओळग होरळीसि

एदेमुगुळनरळिसि

हूनोरधुहळिसि । कुणि.....॥६॥

नानल्ल

नीनल्ल

नन्नल्लि नीनल्ल

साविन नोविल्ल । कुणि.....

इद्दद्दु मरेयोण

इल्लद्दु तेरेयोण

हालजेनु सुरियोण । कुणि.....॥७॥

कोल्याक

सालयाक

कलिकिय काल्याक

हिगिले नडि साक । कुणि.....

घाळेनु तीड्यावु

नम्हांग आड्यावु

ई कुणित बड्यावु । कुणि.....॥८॥

जीवन ऐसा रहे वैसा रहे, कैसा भी रहे, जहाँ है वहीं स्थित रहे। चिन्ताका मेला ही लगा रहे। उसकी परवाह न कर हम नाचें आ, सखी, नाचे आ।

अपने नेत्रोंको हृदयके भीतरकी ओर घुमा दो, हम अन्तर्मुखी हो, हृदय कोरकोंको विकसित करें। पुष्पजलको छिड़ककर चलो, चलेंगे। हम नाचें आ ॥६॥

मैं भी नहीं, तू भी नहीं यहाँ सब लय ही लय है। इस नृत्यके लयमें सब लय हो जाते हैं। मेरा और तेरा अस्तित्व भी मिथ्या है। मुझ में तू नहीं है। मृत्युकी वेदना, यन्त्रणा भी नहीं है। हम नाचे आ।

जीवनमें जो कुछ कष्ट—कष्टक है उन्हें भूल जायेंगे, जो कुछ नहीं है उन्हें आँखोंके सामने ला रखेंगे, उन्हें खींच लेंगे। जीवनके इस जटिल कुटिल कण्टकाकीर्ण पथमे दूध, मधु वहायेंगे। सर्वत्र मधुवृष्टि कर देंगे। आओ न सखी, हम नाचे ॥७॥

नाचनेके लिए दण्डकी क्या आवश्यकता है? एक पंक्तिमें नियमबद्ध होकर हमें खड़े रहनेकी भी आवश्यकता नहीं है। सीखे सिखाए पद-संचारकी भी आवश्यकता नहीं। केवल आनन्द, अप्रमेय आनन्दके साथ चलो, वस, हमारी मनोकामनाएँ साकार हो उठेंगी।

हमारी भाँति ये पवन, कैसे नाच सकेंगे? वे नाचना क्या जानें? हमारी भाँति वे कैसे नृत्य-केलि में रत रह सकते हैं? इस प्रकार नर्तनकी माँग भी वे नहीं करते। चलो हम नाचें ॥८॥

ताळचाक

तंत्याक

रागद चित्याक

हेज्याक गेज्याक । कुणि.....

कुलुकिसि कै कै

मुलुकिसि मै मै

थक थक थै थै । कुणि.....॥९॥

सेरगिल्द

बेरगिल्द

हेदरीकि होरगिल्द

सरगिल्द कोरगिल्द । कुणि.....

नाचीगि-गीचीगि

कळदोगेदाचीगि

बीसागि ईचीगि । कुणि.....॥१०॥

कागुणित

बरिगणित

याक डोंबर मणित

मुगिय सिरिकुणित । कुणि.....

तरगेलि जिगिधांग

चिगुरेलि चिगिहांग

ननिकोने मुगिधांग । कुणि.....॥११॥

हमारे इस अखण्ड आनन्दमय नर्तनके लिए तालकी भी आवश्यकता नहीं, तंत्रीकी भी आवश्यकता नहीं। और रागकी चिन्ता क्यों ? नियत पद सञ्चालन भी नहीं चाहिए, पायलकी भी आवश्यकता नहीं है। केवल आनन्दकी आवश्यकता है, हम नाचें आ, आओ न सखी !

हाथोंको नचा-नचाकर, देहको थिरक-थिरककर “ थक-थक थै-थै ” के तालमें नाचेंगे। आ सखी ॥९॥

विस्मय, आश्चर्यसे रहित है हमारा नृत्य, भय भी नहीं रहेगा और जीवनकी किसी प्रकारकी कसक भी नहीं रहेगी, वेदना भी नहीं रहेगी। हम नाचे आ.....

लाज साज सबको निकाल फेंक दो, निर्मुक्त होकर, निश्चित होकर हम नाचे आ, नवोनव नृत्य केलि करें आ, आ सखी नाचें हम ॥१०॥

बारहखड़ी, पहाड़ेको भी स्मरण रखनेकी आवश्यकता नहीं। गणितकी भी आवश्यकता नहीं है। डोम मदारियोंके नाम की भी आवश्यकता नहीं है। वसन्तकालीन आनन्द नृत्यको भी भूल जाओ। चलो, हम नाचें.....

प्रभञ्जनाक्रान्त जीर्ण-शीर्ण पत्रकी भाँति हम थिरक-थिरक कर नाचें आ। किसलय जिस प्रकार पल्लवित हो उठता है उसी प्रकार पुलक पुलक हम नाचेंगे। तरु लताओंमें जिस प्रकार कलियाँ फूट पड़ती हैं उसी भाँति हम भी नाचें आ। पल्लवित, मर्मरित, कुसुमित हो हो हम नाचें आ ॥११॥

चकचक

चंचल

मिचिन गोंचल

चकमकि चलमल । कुणि.....

होंग्यादिगि होडि

मिडिनागर हेडि

हांगोम्मे तूगाडि । कुणि.....॥१२॥

कुडिगण्णु

नगेगण्णु

चुच्चोनु बिच्चोनु

तेलगण्णु मुच्चोणु । कुणि...

कणकण हेणियोणु

सेळेदत्त मणियोणु

मैसरिये दणियोणु । कुणि...॥१३॥

चिगर्यागि

तिगर्यागि

निद्रिय भगर्यागि

गाळोणु हगुर्यागि । कुणि...

कै मै बीसाडि

इळिगूदलीसाडि

बेवर्हनि सूसाडि । कुणि . . . ॥१४॥

चञ्चलासे भी चञ्चल हो हम जगमग जगमग नाचेंगे । चकमक की चमकसे भी चंचल तथा ज्योतिर्मय हो हम नाचेंगे । चलो, हम नाचें आ ।

स्वर्ण केतकी कुसुमकी बालियोंकी भाँति हम सिर हिला हिलाकर नाचेंगे । सर्पके फनकी भाँति इस ओर और उस ओर अके वार चञ्चल हो नाचेंगे । चलो हम नाचें ॥१२॥

उन्मीलित नेत्र, विस्फारित नेत्र, स्मित नेत्र हो नेत्रोंकी कान्तिसे चौधियाते हम नाचेंगे । बाह्य नेत्रोंको बन्द कर लेंगे । चलो हम नाचे ।

आँखोंसे आँख मिलाएँगे, जहाँ भी आकर्षण हो उधर नमन करेंगे । परवश हो हम नाच नाचकर थक जाएँगे । चुम्बकाकर्षणसे खिचकर हम नाचेंगे । चलो हम नाचेंगे ॥१३॥

हरिण बने, गत्याचक्रकी भाँति, लट्ठूकी भाँति वायुसे भी लघु बने नाचेंगे । आ, हाथ पाँव देह सबको शून्यमें पसार फैलाकर हम नाचेंगे । हमारे ये लोल नीले कुन्तल तिर उठें, स्वेद विन्दु टपक पड़ें । हम अखण्ड नृत्य करें, आ ॥१४॥

गरि गरि
 गिरिगिरि
 हिहिहिगि हिरिहिरि
 सै सै सरि सरि । कुणि . . .
 गड्डा तलेद्वगलि
 होळे हळ्ळा नूगलि
 दरिकोळ्ळा कूगलि । कुणि . . . ॥१५॥

नेलदोडलु
 कुणियलु
 कुणिकुणिदितु कडलु
 मिडिदितु सिडि सिडिलु । कुणि . . .
 हगलिरळ ताळक्क
 मुगियद काळक्क
 जनुमगळ म्याळक्क । कुणि . . . ॥१६॥

हुल्लेला
 स्थिरजला
 चिक्केल्ला मुगिलेल्ला
 कुणितिल्द जग इल्ला । कुणि . . .
 कुणितक्क इति इल्ल
 कुणितक्क मिति इल्ल
 बेरोंदु गति इल्ल । कुणि . . . ॥१७॥

पंख, पंख सब हँसते हँसते लोटपोट हो जायँ, ठीक है ठीक है। चलो, चल हम नाचें।

पर्वत प्रस्तर टीले भी सिर हिलावें, नदी नाले भी नर्तनकी गतिमें इठलाते-बलखाते जावें। खन्दक, गड्ढे भी आनन्दसे चिल्ला उठें। चलो हम नाचें ॥१५॥

धरित्रीकी देह जब नाच उठी तो सागर भी हर्षसे उछल पड़ा। आकाशमें तड़ित भी चमक उठी। नाचे आ।

दिवा-रात्रिके तालपर ताल देकर हम नाचेंगे। निरन्तर रूपमें चलनेवाले अनन्तकाल तक हम नाचें, जन्म-जन्मोंकी नृत्य गोष्ठी जमी हुई है। अतः हम उधर जाकर नाचेंगे। चलो नाचेंगे ॥१६॥

श्यामल शाद्वल-वेष्टित भूमि नाच रही है, स्थिर जल भी नाच रहा है। आकाशके उडुगण भी नाट्यमें रत हैं। गम्भीर आकाश भी नाच रहा है। ऐसा कोई नहीं जो न नाच रहा हो। चलो हम नाचे।

इस अखण्ड नृत्यकी कोई इति नहीं है, इस नृत्यको छोड़ अखिल सृष्टिकी कोई अन्य गति ही नहीं है। अतः नृत्य ही सृष्टि, प्रलयका मूल है। चलो हम नाचें ॥१७॥

अंगलु

अंगलु

चिकिचिक्कि तिगळु

उसिरासे हिगलु । कुणि . . .

नेलमुगिलनप्पितु

चेलुवागि ओप्पितु

सावोम्मे तप्पितु । कुणि...॥१८॥

आ क्षीर

सागर

दानंद सागर

तेरि तेरि तेरदत । कुणि . . .

हदिनाल्लु लोकक्क

चिम्मलि ई सुख

हिगलि सिरिमुख । कुणि . . . ॥१९॥

—————

आकाश सर्वत्र विरल रूपमें बिखरी नक्षत्र मलिकाओंसे पूर्ण है, चन्द्रमा ही सर्वत्र भासमान हो रहा है। जीवनकी आशा भी मिट गयी है। चलो, हम नाचे।

धरित्रीने अम्बरका आलिंगन किया, कितना सुन्दर लगता है। इन प्राणोंको आकुल करनेवाले आलिंगनमें मृत्यु भी चूक जाती है। हमसे दूर चली जाती है। देशकाल तथा मृत्युके बन्धनसे परे होकर हम नृत्यमग्न हो जाएँ, आ ॥१८॥

उस क्षीरसागरमें जो आनन्दका आगार बना है, तरंगें उठ रही हैं। आ हम उसमें आप्लावित हो जाएँ। यह सुख चतुर्दश भुवनोंमें व्याप्त हो जाए, इसी सुखमें प्रभुका श्रीमुख भी खिल उठे। चलो हम नाचें ॥१९॥

१२. हृदय-समुद्र

बंगार नीर कडलाचेगीचेगिदे नील नील तीरा ।
 मित्रु बळग तेरे तेरेगळागि अलेयुबुदु पुट्ट पूरा ।
 अदु नम्म ऊरु, इदु निम्म ऊरु, तंतम्म ऊरो धीरा ।
 अदरोळगे नावु, नम्मोळगे तावु, अदु इल्लवण्ण दूरा ॥१॥

करे बंदितण्ण, तेरे बंदितण्ण नेरे बंदितण्ण बळिगे ।
 हरितऽद भाव, बेरितऽदजीव अदरोळगे ओळगे ओळगे ।
 इदे समयवण्ण इदे समयतम्म नम् निम्म आत्मगळिगे ।
 अंबिगनु बंद नंबिगनु बंद बंदऽद दिव्य गळिगे ॥२॥

१२. हृदय-समुद्र

[महाकविकीं इधरकीं कविताओपर अरविदके पूर्णयोग, अतिमानववाद आदिका प्रभाव पड़ा है। 'अति मानस' अनुभूतियोंकी वाणी बननेके कारण आलोचकोका कहना है कि इनकी कविता दर्शनसे बाँझिल है, प्रस्तुत कविता इसीका करारा उत्तर है।]

सुवर्ण जलका अथाह सागर लहरा रहा है। उसके उस पार और इस पार नीले-नीले तीर हैं। इन नीले तीरोंके बीच स्वर्ण सागर तरंगित है। उस सागरमें सौदामिनियोंके पुञ्जके पुञ्ज तरंग बन उठ रहे हैं। उस अपार सागरमें इन सौदामिनि स्त्रीचियोंका विलास लास्य होता रहता है। वह हमारा गाँव है, यह तुम्हारा गाँव है, हे धीर ! ये सब अपने अपने निवास स्थान हैं उसके अन्दर हम हैं, (नाक—हम नाव) (तावु—ठाव, आय) हमारे अन्दर आप हैं, उसके अन्दर भाव है, हमारे अन्दर उस नावका ठिकाना है। किन्तु वह सागर दूर नहीं है उसकी तरंगें हमारे ही समीप आ रही हैं ॥१॥

सुनो भाई, उधरसे बुलावा आ गया। कोई निमन्त्रण दे रहा है। हमारे पास ही उस सागरकी तरंगें आ रही हैं, सागरका अगाध जल हमारे पास ही दौड़ा आ रहा है। उसके भीतर भावकी लहरियाँ उलित हो बढ़े रही हैं। जीव उसके अन्तरमें लीन हो रहा है। भाई, यही समय है, यही सुनहला अवसर है हमारी तुम्हारी आत्माके लिए। हमारा विश्वसनीय श्रद्धेय आया है, हमारा नाविक आया है। वह दिव्य घड़ी आई है, आओ, हम जाएँगे। और कहीं यदि चूके तो मौका हाथसे खो दोगे ॥२॥

इदु उप्पु नीरु कडलल्लो नम्म ओडलल्लु इदर नेलेयु ।
 कंडवरिगल्लो कंडवरिगण्टे तिळिदऽद इदर बेलेयु ।
 सिक्कल्लि अल्ल सिक्कल्ले मात्र ओडेयुवुदु इदर सेलेयु ।
 कण्णरळिदाग कण् होरळिदाग होळेयुवुदु इदर कळेयु ॥३॥

बंदवर बळिगे बंदऽद मत्तु निदवर नेरेगु
 बंदऽदो बंदऽद ।

नव मनुवु बंद होस द्वीपगळिगे होरटान बन्नि
 अंदऽदो अंदऽद ॥४॥

—

यह क्षारयुक्त जलन ही है, और इसे ढूँढ़नेके लिए बहुत दूर जानेकी आवश्यकता भी नहीं है। हमारी देहमें ही उसकी स्थिति है, कहीं अन्यत्र नहीं।

किसी ऐरे-गैरेको इसका मूल्य ज्ञात नहीं होता, किन्तु जिन्होंने देखा है, जो द्रष्टा हैं उनको इसकी महिमाका पता है। हर कहीं, जहाँ चाहें वहाँ इसका स्रोत नहीं फूट पड़ेगा। जहाँ प्राप्ति होती है, वहाँ इसका फव्वारा फूट पड़ेगा। जब हमारा नेत्रोन्मीलन होगा, जब हमारी आँखें उस ओर जाएँगी, तब इसकी अलौकिक कान्ति जगमगा उठेगी ॥३॥

जो उस पार जानेके लिए आए हैं, उनके पास यह नाव आई है और जो खड़े हैं, उनके पास भी आई है और वह पुकार-पुकार कर कह रही है, नव मनु (अरविन्द) आया है। नव नव द्वीपोंमें प्रवास करने चला है 'आइए-आइए' इस प्रकारकी पुकारको क्या अनसुना कर दोगे, आओ न॥४॥

— — — — —

